मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 85 ● वर्ष 9, अंक 11 ● जनवरी 2020 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

सीएए और एनआरसी क्या हैं और इनसे आप कैसे प्रभावित होंगे? 7

2019 की कुछ यादगार तस्वीरें, नारे और कार्टून 8-9

फ़ैक्टरी-मज़दूरों की एकता, वर्ग-चेतना और संघर्ष का विकास 13

बग़ावत की चिंगारी सुलगा गया गुज़रा साल

नये साल में इसे इन्क़लाब की ज्वाला में तब्दील करने की तैयारी करनी होगी!

इक्कीसवीं सदी का दूसरा दशक भी पूरा हो चुका है। इस पूरे दशक के दौरान लगातार जारी पूँजीवाद का विश्वव्यापी संकट दुनियाभर की मेहनतकश आवाम की ज़िन्दगी को तार-तार करता रहा। क्रान्तिकारी नेतृत्व की ग़ैरमौजूदगी या कमज़ोरी की वजह से दुनिया के तमाम देशों में इस संकट का लाभ धुर-दक्षिणपन्थी और फ़ासिस्ट ताक़तों ने उठाया। हमारे देश में भी फ़ासीवाद का दानव मज़दूर वर्ग पर कहर बरपा करने के साथ ही साथ सामाजिक ताने-बाने और राजनीतिक-प्रशासनिक-न्यायिक संरचना में अपनी घुसपैठ बढ़ाता रहा।

लेकिन निराशा और घुटन से भरे इस अँधेरे फ़ासीवादी दौर में बीते साल प्रतिरोध की आग भभक उठी। विभिन्न देशों में अलग-अलग मुद्दों को लेकर शुरू हुए जनान्दोलनों ने जल्द ही जनबग़ावत का रूप ले लिया जो जंगल की आग की तरह दुनिया के कई महाद्वीपों में फैल गयी। इस वैश्विक विद्रोह की वजह से पूँजीवाद के अस्तित्व पर ख़तरा भाँपते हुए लग्गू-भग्गू विचारक भी ख़ौफ़ज़दा होकर पूँजीपति वर्ग को चेताने में जुट गए। भारत में भी जब फ़ासीवाद की अँधेरी सुरंग अन्तहीन लगने लगी थी तभी नागरिकता संशोधन क़ानून (सीएए) और नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) के ख़िलाफ़ स्वत:स्फूर्त जनप्रतिरोध की चिंगारी नज़र आने लगी। यह जनप्रतिरोध अब एक देशव्यापी जनान्दोलन की शक्ल अख़्तियार कर चुका है।

सम्पादक मण्डल

इसमें कोई शक नहीं है कि सीएए और एनआरसी के ख़िलाफ़ शुरू हुए स्वत:स्फूर्त जनान्दोलन में एक व्यापक फ़ासीवाद-विरोधी और व्यवस्था-विरोधी आन्दोलन की सम्भावना छिपी है, बशर्ते कि सही रणनीति के तहत इसकी दिशा तय की जाये। आज क्रान्तिकारी ताक़तों के सामने सबसे बड़ी चुनौती इस आन्दोलन को स्वत:स्फूर्ततावाद और संविधानवाद की चौहद्दी से बाहर निकालने की है। इस चुनौती पर हम आगे बात करेंगे, लेकिन आइए पहले हम पिछले साल के घटनाक्रम पर एक नज़र दौड़ा लें।

राष्ट्रीय पटल पर बीते साल घटी प्रमुख घटनाएँ

गुज़रा साल भारत के समकालीन इतिहास के सबसे अहम सालों में गिना जाएगा क्योंकि जहाँ एक ओर इस साल के दौरान फ़ासीवाद की आक्रामकता अभूतपूर्व स्तर पर जा पहुँची वहीं दूसरी ओर उसके ख़िलाफ़ प्रतिरोध भी व्यापक हुआ। राजनीतिक रूप से साल की सबसे महत्वपूर्ण घटना निस्संदेह सोलहवें लोकसभा चुनावों में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में फ़ासीवादी भाजपा की विशाल जीत रही। यह जीत इस मायने में अहम है क्योंकि मोदी सरकार के पहले कार्यकाल के दौरान आम जनता की ज़िन्दगी बद से बदतर होने के बावजूद फ़ासिस्ट फिर से सत्ता में वापस आने में कामयाब हो गए। इस जीत ने साफ़ तौर पर दिखाया कि राजनीतिक नतीजे सीधे-सीधे आर्थिक हालात से तब तक तय नहीं होते जब तक कोई राजनीतिक शक्ति जनता के बीच सक्रिय होकर राजनीतिक एजेण्डा नहीं सेट करती। इस जीत ने यह भी दिखाया कि फ़ासिस्ट भारत के बुर्जुआ संवैधानिक ढाँचे की तमाम संस्थाओं को दीमक की तरह चाटकर अन्दर से खोखला बना चुके हैं और अब महज़ लोकतंत्र का खोल बचा हुआ है।

मोदी सरकार ने अपने दूसरे कार्यकाल के शुरुआती महीनों में ही अपनी मंशा ज़ाहिर करते हुए राष्ट्रीय

(पेज 5 पर जारी)

जनता के मिज़ाज को भाँपने में फ़ासिस्ट सत्ता बुरी तरह नाकाम!

लोगों को बाँटने की फ़ासिस्ट साज़िश के देशव्यापी प्रतिरोध को संगठित स्वरूप और दिशा देने की ज़रूरत

कहते हैं, जहाँ दमन है, वहाँ प्रतिरोध भी होगा! पिछले साढ़े पाँच वर्षों के दौरान मोदी सरकार और भगवा गिरोह ने देश की जनता के विरुद्ध जो चौतरफ़ा युद्ध छेड़ रखा था, उसके विरुद्ध इस देश के मेहनतकशों और नौजवानों ने लड़ना तो कभी बन्द नहीं किया था, लेकिन इस बार पूरे देश के लोगों के सब्र का प्याला छलक चुका है। भागवत, मोदी और शाह ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि पाँच साल तक लगातार हिन्दू-मुस्लिम-पाकिस्तान के नाम पर ज़हर फैलाने के बाद भी उन्हें इस मुद्दे पर लोगों के ऐसे एकजुट विरोध का सामना करना पड़ेगा। उनको लगा था कि यह तो ऐसा मुद्दा है जिस पर लोगों को धर्म की बिना पर आसानी से बाँटकर अपना उल्लू सीधा किया जा सकता है। मगर जनता से कटे शासक, और सबसे बढ़कर फ़ासिस्ट अक्सर ही जनता के मिज़ाज को भाँपने में बुरी तरह नाकाम रहते हैं। ऐसा ही इस बार भी हुआ है।

उनकी सारी उम्मीदों को धता बताते हुए, बर्बर पुलिसिया दमन के बावजूद जनान्दोलन समाज में और गहराई तक पैठ गया है। देश के महानगरों से लेकर छोटे-छोटे शहरों-क़स्बों तक से लगातार ज़ोरदार विरोध-प्रदर्शनों की ख़बरें आ रही हैं।

बदहवास फ़ासिस्ट सत्ताधारी एक और तो टीवी चैनलों और रैलियों में तरह-तरह की सफ़ाइयाँ दे रहे हैं, दूसरी तरफ़ दमन-चक्र तेज़ कर दिया गया है। इसमें योगी और येदियुरप्पा की सरकारें सबसे आगे हैं। बिहार के औरंगाबाद में भी पुलिस और संघी गुण्डों ने मुसलमानों पर ख़ूनी हमले किये। उत्तर प्रदेश में योगी की "बदला लेने" की धमकी पर अमल करते हुए पुलिस ने आरएसएस के एजेण्ट की तरह काम करते हुए अनेक शहरों में दमन का जो ताण्डव मचाया उसने हैवानियत के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। पुलिस की गोलियों से कम से कम 20 लोग मारे गये और हज़ारों लोग गिरफ़्तार किये गये हैं। घायलों की संख्या सैकड़ों में हो सकती है। फ़र्ज़ी मुक़दमों और गिरफ़्तारियों का सिलसिला जारी है। लेकिन ये दमनात्मक कार्रवाइयाँ जन-प्रतिरोध की आग में घी डालने का ही काम कर रही हैं। दमन से ऐसे आन्दोलनों को कत्तई दबाया नहीं जा सकता।

टीवी चैनलों और भाजपा के पूरा ज़ोर लगाने के बावजूद आन्दोलन को 'हिन्दू-मुस्लिम' करके बाँटने की हर कोशिश अबतक नाकाम हुई है। कई शहरों में सड़कों पर उतरने वालों में मुस्लिमों से बड़ी संख्या हिन्दुओं की रही है। महानगरों में सड़कों पर भारी संख्या छात्रों-युवाओं की नज़र आ रही थी, पर अब छोटे-छोटे शहरों में भी बहुसंख्यक आम नागरिक सड़कों पर दीख रहे हैं। लगभग हर जगह आन्दोलन की सबसे जुझारू और मुखर शक्ति स्त्रियाँ हैं। दिल्ली के शाहीन बाग़ इलाक़े में 15 दिसम्बर से कड़कड़ाती ठण्ड में दिनो-रात जारी धरने की जान वही हैं। यह धरना अब इस आन्दोलन का एक प्रतीक स्थल बन गया है जो देशभर में लड़ रहे लोगों को ताक़त दे रहा है।

(पेज 5 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिये लोगों तक पहुँचें?

तो कलम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

गुड़गाँव : मज़दूर संघर्षों की रिपोर्ट

(पेज 3 से आगे)

को काम पर लगवाने की बात की, जिसे मज़दूरों ने एकसुर में नकार दिया। मज़दूरों ने जवाब दिया कि सबको पक्का किया जाये न कि सिर्फ हरियाणा के मज़दूरों को। इसके बाद चौटाला ने 27 दिसम्बर को मजदूरों को चण्डीगढ़ बुलाया पर चुपचाप निकल लिया।

शिवम ऑटोटेक लि. के स्थायी मज़दूरों का संघर्ष जारी

शिवम ऑटोटेक लि. मज़दूर यूनियन का धरना भी 12 दिसम्बर से गुड़गाँव में श्रम विभाग के दफ़्तर के सामने जारी है। वे अपनी यूनियन को बचाने, नेतृत्वकारी श्रमिकों के तबादले को रद्द कराने, तय समझौता को लागू करवाने, आदि मसले को लेकर जिला सचिवालय पर धरना दे रहे हैं। कुछ महीने पहले ये मज़दूर अपने 42 श्रमिकों के निलम्बन तथा तबादले के ख़िलाफ़ व अपना माँगपत्रक लागू करवाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। मज़दूरों की एकजुटता के दबाव में मैनेजमेंट को 42 श्रमिकों को वापस लेना पड़ा। लेकिन अन्य समझौतों को लागू करने में कम्पनी आनाकानी करने लगी और यूनियन को कमज़ोर करने और तोड़ने के हथकण्डे अपनाने लगी। अभी कम्पनी ने यूनियन नेतृत्व समेत 15 श्रमिकों का तबादला के नाम पर गेट बन्द कर दिया है। उनके समर्थन में अन्य श्रमिक कारख़ाने में अपनी शिफ़्ट का काम निपटा कर बारी-बारी से धरना स्थल पर बैठते हैं। माँगों का कोई समाधान ना होने से मज़दूरों में गुस्सा बढ़ता जा रहा है। विभिन्न संगठन इनका समर्थन भी कर रहे हैं। ऑटोमोबाइल इंडस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन पिछले कई महीनों से इनके समर्थन में प्रचार भी कर रही है। दो सप्ताह से ज़्यादा बीत जाने पर भी कम्पनी से लेकर श्रम विभाग तक महज़ झूठे आश्वासन ही दिये जा रहे हैं और बहानेबाज़ी कर रहे हैं।

ऑटोनेम कम्पनी में मज़दूरों का संघर्ष

राजस्थान के बहरोड़ (ज़िला अलवर) रीको एरिया में स्थित ऑटोनेम कम्पनी में कैज़ुअल और परमानेंट मज़दूरों के साथ हो रहे शोषण-उत्पीड़न का मामला भी सामने आया है। मारुति के पार्ट्स बनाने वाली इस कम्पनी के स्थायी मज़दूरों ने मैनेजमेंट की कोशिशों को नाकाम करते हुए 11 दिसम्बर को ऑटोनेम कर्मचारी एकता यूनियन पंजीकृत करवायी। नयी यूनियन ने सबसे पहले 2 से 12 साल पुराने कैज़ुअल मज़दूरों के पक्का करने की माँग का समर्थन किया। इस पर कम्पनी ने क़रीब 40 मज़दूरों को मन्दी और शटडाउन का बहाना बनाकर बाहर कर दिया। नयी यूनियन द्वारा इसका विरोध करने पर कम्पनी खुली गुण्डागर्दी पर उतर आयी। कम्पनी में बाउसरों और हथियारबन्द लोगों की भरती की गयी और कैज़ुअल और परमानेंट दोनों मज़दूरों को कम्पनी में बन्दी बनाकर मारपीट तक की गयी। महिला मज़दूरों के साथ भी अभद्र भाषा का इस्तेमाल किया गया। पुलिस पहुँचने के बाद मज़दूरों को जाने दिया गया। अभी मामला एसडीएम के पास है। 6 जनवरी को दोबारा इस मुद्दे पर बात होगी।

शिरोकी टेक्निको (बावल) के मज़दूर संघर्ष की हार

इससे पहले शिरोकी टेक्निको बावल के मजदूरों को अपना संघर्ष हार के साथ खत्म करना पड़ा। पिछली 4 नवम्बर को कम्पनी के साथ लिखित समझौते पर हस्ताक्षर हुए थे। मगर कम्पनी ने कैज़ुअल मज़दूरों के साथ हुए लिखित समझौते को नकार दिया। दिवाली पर छुट्टी से लौटने पर उन्हें काम पर वापस नहीं लिया और ठेका ख़त्म होने का नोटिस लगा दिया गया था। मज़दूर अकेले ज़्यादा दिनों तक संघर्ष नहीं कर पाये और हिसाब लेने के लिए मज़बूर हो गये।

नपीनो (मानेसर) के संघर्षरत मजदूरों की माँगें मानी गयीं

मानेसर में होण्डा के बाद नपीनो के मज़दूर भी माँगों को लेकर धरने पर बैठ गये थे। जून 2019 में पुराना सैटलमेंट ख़त्म होने के तीन महीने पहले ही यूनियन ने नियम के मुताबिक अपना नया माँगपत्र दे दिया था। लेकिन कम्पनी प्रबन्धन ने छह महीने बीत जाने के बाद भी नये माँगपत्र पर कोई कार्रवाई नहीं की। तरह-तरह के बहाने किये जा रहे थे। कभी कहा जा रहा था कि नये मॉडल आने पर तय किया जायेगा तो कभी उच्च अधिकारियों के बाहर होने का बहाना बनाया जा रहा था। जब मामला मीडिया में उछलना शुरू हुआ तो 3 दिन बाद मज़दूरों की माँगें मान ली गयीं और मज़दूर काम पर वापस लौट गये। बगल में होण्डा के कैज़ुअल मजदूरों का आन्दोलन जारी था और कम्पनी को डर था कि दोनों कम्पनियों के मज़दूर मिलकर संघर्ष करने लगे तो आन्दोलन दूसरी कम्पनियों में भी फैल जायेगा और तमाम मालिकों के लिए परेशानी हो जायेगी।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

दिल्ली के चुनावों में आम मेहनतकश जनता के सामने क्या विकल्प है?

दिल्ली में विधानसभा चुनाव आने ही वाले हैं और चुनावों में कांग्रेस से लेकर आम आदमी पार्टी झोला भरकर वायदा कर रहे हैं तो भाजपा वायदों के साथ नफ़रत का ज़हर लोगों के दिमाग़ में घोलकर सत्ता में पहुँचने की तैयारी कर रही है। मोदी ने दिल्ली के रामलीला मैदान में चुनावी सभा में कहा कि वह दिल्ली की अनधिकृत कॉलोनियों को पक्का करने का अधिकार देकर दिल्ली की जनता की सेवा कर रहा है। जबकि असल में इससे झुग्गियों में रहने वाली छोटी मकान मालिक आबादी को ही फ़ायदा मिलेगा और यह भी अभी काग़ज़ पर हुआ है जब ज़मीन पर लागू होगा तो इसकी हक़ीक़त सामने आयेगी। डीडीए की वेबसाइट पर इस योजना के ज़रिये पक्के मकान मिलने की बात से इन्कार किया गया है।

लेकिन यह भाजपा के प्रचार के गौण बिन्दू हैं और इस समय भाजपा पूरा प्रयास कर रही है कि सीएए, एनआरसी और एनपीआर के ख़िलाफ़ चल रहे आन्दोलन को साम्प्रदायिक रूप देकर दंगों को भड़काये जिससे कि चुनाव को मुसलमान घुसपैठियों बनाम भाजपा का रंग देकर जीता जा सके। सोशल मीडिया में वायरल वीडियो में यूपी, बिहार और कर्नाटक में यह काम ख़ुद पुलिस करते हुए दिख रही है। हमें यह पता होना चाहिए कि यह मोदी सरकार मज़दूरों के लिए मौजूद श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर मज़दूरों की मेहनत की लूट को आसान बना रही है ताकि अनाजमण्डी सरीखे कारख़ाने बिना क़ानूनी रोकटोक के चल सकें और इस वजह से ही अनाजमण्डी अग्निकाण्ड होते रहें। फ़ासीवादी संघी सरकार मज़दूर विरोधी नीतियों को लागू करने में नम्बर एक है। यह मज़दूरों-मेहनतकशों की दुश्मन नम्बर एक पार्टी है यह बात हमें आगामी चुनावों में कभी भी नहीं भूलनी चाहिए।

आम आदमी पार्टी भी ज़ोर लगा रही है कि इस चुनाव में फिर से केजरीवाल की ग़रीब पक्षधर छवि पेश की जाये लेकिन हमें पता होना चाहिए कि यह ठग है जो पिछले विधानसभा चुनाव में मज़दूरों-मेहनतकशों के वोट से मुख्यमंत्री बना परन्तु इसने दिल्ली के छोटे पूँजीपतियों, दूकानदारों पर सेल्स टेक्स के छापे लगवाने बन्द करवा दिये परन्तु मज़दूरों और आम जनता से किये वायदों – यानि ठेका प्रथा ख़त्म करना, न्यूनतम वेतन लागू करवाना और झुग्गी वालों को पक्का मकान देना, नये स्कूल खुलवाना, रोज़गार की सुविधा करना आदि से मुकर गया। आज कुछ सब्सिडी देकर यह फिर से अपनी लोकलुभावन राजनीति की दुकान चला रहा है परन्तु दिल्ली में जब मज़दूर जलकर मरते हैं तो इसकी कलई खुलकर सामने आती है। पूरे दिल्ली में चल रहे लाखों कारख़ानों की दिल्ली सरकार के श्रम विभाग द्वारा कोई जाँच नहीं हुई है। हर साल इन फ़ैक्टरियों में गुमनाम तरीक़े से मज़दूर मारे जाते हैं परन्तु इस पर कोई बवाल नहीं होता है। अनाजमण्डी अग्निकाण्ड में हुई मौतें ठण्डी मौतें हैं जिनका हिसाब अनाजमण्डी के मालिक भी लगाकर रखते हैं। इन मौतों की क़ीमत श्रम विभाग के कर्मचारियों, पुलिस, बिजली विभाग, अग्निशमन विभाग और लाइसेंस देने वाली म्युनिस्पैलिटी को पहले ही अदा की जा चुकी होती है। श्रम विभाग द्वारा इन फ़ैक्टरियों की कोई जाँच नहीं होती है। दिल्ली सरकार ही इन हत्याओं की मुख्य ज़िम्मेदार है जिसका श्रम मंत्रालय श्रम क़ानूनों का उल्लंघन करने पर मालिकों की पीठ में खुजली तक नहीं करता है। दिल्ली सरकार के श्रम मंत्री गोपाल राय के झूठ बार-बार सबके सामने नंगे हुए हैं।

इस अग्निकाण्ड के अगले महीने फिर से किराड़ी में 9 मज़दूरों की मौत हुई जिस पर केजरीवाल कुछ भी नहीं बोला। इस चुनाव में मज़दूरों को इस ठग को झाड़ू से मारकर भगा देना होगा। वहीं कांग्रेस भी चुनाव से पहले तमाम लोकलुभावन वायदे कर रही है। लेकिन क्या इन वायदों पर भरोसा किया जा सकता है? यह वही पार्टी है जिसने अपने 60 साल के राज में 'ग़रीबी हटाओ' जैसे लोकलुभावन नारे देकर देश की सम्पदा को टाटा-बिड़ला जैसे पूँजीपतियों के हाथों बेचा है। यही वह पार्टी है जिसने निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों को 1991 में खुले तौर पर शुरू करके मज़दूरों की ज़िन्दगी को तबाहो-बर्बाद करने का काम किया था। भाजपा इन्हीं नीतियों को और भी ज़्यादा बेशर्मी और नंगई से आगे बढ़ा रही है। दिल्ली में नकली वाम पार्टियाँ भी इन चुनावों में अपना भाग्य आज़माने और जनता को बरगलाने के लिए ज़रूर पहुँचेंगी। 8 जनवरी को होने जा रही हड़ताल के ज़रिये साल में एक बार अभियानों में जागने वाली इनकी यूनियनें इस व्यवस्था की सुरक्षा पंक्ति की भूमिका निभाते हुए चुनावों में संसदीय प्रणाली में यक़ीन का प्रचार करेंगी। कुछ चुनावी क्षेत्रों में बसपा जातिवादी राजनीति के बूते अपने वोट को रख पाने में सक्षम होगी और अपने खाये-पिये-अघाये आरक्षण प्राप्त दलित तबक़े की मुख्य पार्टी के रूप में अपना दावा पेश करेगी परन्तु जब दिल्ली के सीवरों में दलित मज़दूर मरते हैं तो ये पार्टी चुप रहती है, दलित विरोधी नागरिकता संशोधन क़ानून और एनआरसी के ख़िलाफ़ बसपा सड़क पर नहीं उतरती है। दलितों की 90 फ़ीसदी आबादी भूमिहीन व मज़दूर आबादी है, जिसके पास अपनी नागरिकता साबित करने के लिए कोई दस्तावेज़ नहीं है। ऐसे में, उनके लिए नागरिकता साबित करना ही बेहद मुश्किल होगा। साफ़ है कि बसपा मज़दूर-मेहनतकश दलितों का प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

तो क्या ये सभी पार्टियाँ दिल्ली की जनता को कोई विकल्प दे पाने में सक्षम हैं? नहीं, कतई नहीं। ये सभी पार्टियाँ सत्ता में मौजूद बुर्जुआ वर्ग के अलग-अलग तबक़ों का प्रतिनिधित्व करती हैं। मज़दूर और मेहनतकश जनता की लूट को क़ानूनी जामा पहनाने और इसे स्वीकार्यता देने के काम के लिए ही सरकार में इनका दावा पेश किया जाता है। आर्थिक मन्दी के इस दौर में जब अर्थव्यवस्था डाँवाडोल है पूँजीपतियों ने अपना पूरा दाँव फ़ासीवादी भाजपा पर लगाया है जो मज़दूर-विरोधी और जनविरोधी क़ानूनों को धड़ल्ले से लागू कर रही है तो दूसरी तरफ़ सीएए और एनपीआर-एनआरसी सरीखे क़ानूनों के ज़रिये हमें साम्प्रदायिक आग में झोंक रही है। परन्तु, भाजपा के अलावा कोई अन्य चुनावबाज़ पार्टी भी विधानसभा चुनाव में हमारी प्रतिनिधि नहीं हो सकती है क्योंकि ये भी कॉरपोरेट घरानों, व्यापारियों, छोटे फ़ैक्टरी मालिकों, बड़े किसानों के चन्दे पर चलने वाली पार्टियाँ हैं जिन तबक़ों की शोहरत मज़दूर-मेहनतकश वर्ग की लूट पर आधारित है।

आप ख़ुद ही इन सवालों का जवाब दीजिए कि क्या कोई पार्टी मज़दूरों के श्रम क़ानूनों को बचाने के लिए सड़क पर उतरी है? क्या किसी पार्टी ने कार्यस्थल पर सुरक्षा के क़ानूनों के लिए वाक़ई में जनता के बीच संघर्ष चलाया है? क्या रोज़गार के हक़ को लेकर कोई पार्टी सड़कों पर मौजूद है? एक दिवसीय प्रदर्शन में अपनी पीपनी बजाने वाली नकली लाल झण्डे वाली पार्टियों की ट्रेड यूनियनें फ़ैक्टरी इलाक़ों में मालिकों के साथ समझौते और दलाली ही करती रही हैं। चाहे होण्डा का आन्दोलन हो या वज़ीरपुर में मज़दूर की मौत पर समझौता कराना हो, ये नकली लाल झण्डे वाली पार्टियाँ, भाकपा, माकपा और भाकपा (माले), मज़दूर वर्ग की ग़द्दार पार्टियाँ हैं। सभी पूँजीवादी पार्टियाँ जनता के रोज़गार, आवास, श्रम क़ानून सरीखे मसलों पर चुप रही हैं। मज़दूरों और मेहनतकशों की एक आवाज़ के रूप में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी मौजूद रही है। यही पार्टी दिल्ली के अनाजमण्डी भीषण अग्निकाण्ड में मज़दूरों के हक़ों के लिए आवाज़ उठा रही थी।

दिल्ली में मज़दूरों और मेहनतकशों की विरोधी व साम्प्रदायिक क़ानून, नागरिकता संशोधन क़ानून के ख़िलाफ़ भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी एक सशक्त आवाज़ बनकर उभरी है। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के ही वॉलण्टियर और सदस्य अश्फ़ाक़ और बिस्मिल का सन्देश आम जनता के बीच लेकर गये थे जब उन्हें गिरफ़्तार किया गया। दिल्ली के आगामी चुनावों में भी मज़दूरों के स्वतंत्र क्रान्तिकारी पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाली एकमात्र पार्टी भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी है। आम मेहनतकश आबादी को चुनावों में क्या करना चाहिए? हमें भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के साथ जुड़ना चाहिए, उसका वॉलण्टियर बनना चाहिए और जहाँ कहीं भी उसके उम्मीदवार खड़े हों वहाँ उन्हें उसे एकजुट होकर वोट देना चाहिए। विधानसभा चुनावों में आरडब्ल्यूपीआई की विजय के ज़रिये मज़दूर वर्ग और ग़रीब किसान आबादी अपने हक़ों के संघर्ष को आगे ले जा सकती है। केवल ऐसे मज़दूर वर्गीय विधायकों की विधानसभा में मौजूदगी ही आपके क्षेत्र में मज़दूर और मेहनतकश आबादी के लिए तमाम सुविधाओं जैसे पीने के पानी, बिजली, शौचालय व साफ़-सफ़ाई, आदि का इन्तज़ाम कर सकती है और साथ ही यह सुनिश्चित कर सकती है कि श्रम क़ानूनों को लागू किया जाये। केवल ऐसे मज़दूर प्रतिनिधियों की विधानसभा में मौजूदगी के ज़रिये हम ठेका प्रथा को समाप्त करने, कार्यस्थल पर सुरक्षा के इन्तज़ामात करने, न्यूनतम मज़दूरी को कम से कम 20 हज़ार रुपये करने और उसे लागू करवाने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। इसलिए आरडब्ल्यूपीआई को जिताने के लिए आम मेहनतकश आबादी को एकजुट होकर वोट देना चाहिए और कांग्रेस, भाजपा, इनेलो, आम आदमी पार्टी जैसी पूँजीवादी चुनावी पार्टियों को सबक़ सिखाना चाहिए।

गुड़गाँव और आसपास की औद्योगिक पट्टी से मज़दूर संघर्षों की रिपोर्ट

– शाम मूर्ति

होण्डा के ठेका मज़दूरों का ठेका-प्रथा के ख़िलाफ़ स्थायी रोज़गार के लिए संघर्ष दो महीने से जारी

2019 बदलकर 2020 आ गया पर होण्डा (मानेसर) के 2500 कैज़ुअल मज़दूरों का ठेका प्रथा के ख़िलाफ़ स्थायी रोज़गार के लिए जुझारू संघर्ष दो महीने से जारी है। ये कैज़ुअल मज़दूर सात से बारह साल से कार्यरत हैं। इन कैज़ुअल मज़दूरों के समर्थन में होण्डा यूनियन के प्रधान सहित आठ मज़दूरों का निलम्बन भी अब तक वापिस नही लिया गया है और न ही उनके समझौता पत्र को लागू किया जा रहा है। ऑटो सेक्टर की कई अन्य कम्पनियों में भी यूनियन से हुए समझौतों पत्रों को लागू नहीं किया जा रहा है।

पिछली चार नवम्बर को जब कम्पनी ने मन्दी की आड़ में ठेका मज़दूरों की छँटनी शुरू की तो अगले दिन बाकी के ठेका मज़दूरों ने छँटनी किये गये कैज़ुअल मज़दूरों को वापस लेने की माँग पर काम बन्द कर दिया था और कम्पनी गेट के अन्दर-बाहर दोनों जगह मज़दूर धरने पर बैठ गये थे। चौदह दिनों के बाद कम्पनी प्रबन्धन, श्रम विभाग, केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों तथा होण्डा की यूनियन के आश्वासन पर मज़दूर कम्पनी से बाहर आ गये थे और उनसे वादा किया गया था कि दो दिन में ही फ़ैसला कर दिया जायेगा। लेकिन उसके बाद भी कई बार श्रम विभाग, प्रशासन और हरियाणा सरकार को याददिहानी और गुहार लगाने के बावजूद भी मज़दूरों की अभी तक सुनवाई नहीं हुई।

मानेसर इलाक़े की कुछ यूनियनों के सरपंचों की भूमिका में असल कौन लोग हैं?

पिछले 21 दिसम्बर को होण्डा के संघर्षरत मज़दूरों के धरने को हटाने की साजिश के तहत कम्पनी ने आईएमटी इलाक़े में, धरनास्थल के पास ही, अपने लगुओं-भगुओं की मदद से तथाकथित पंचायत बुलायी। इसमें फ़तवा जारी किया गया कि अगर मज़दूरों को धरना स्थल से नहीं हटाया जायेगा तो पंचायत इसको सहन नहीं करेगी। अफ़वाह फैलायी गयी कि मज़दूरों के इस प्रदर्शन से पूरे आईएमटी का माहौल ख़राब हो रहा है। यह पूरी पंचायत कम्पनी की ख़ातिरदारी में चली। दरी, जेनरेटर, बाजे, चाय, पानी, नाश्ता सबका इन्तजाम कम्पनी ने किया था।

हालाँकि मज़दूरों द्वारा प्रशासन पर दबाव बनाने के बाद फ़तवा जारी करने वालों को अपना बोरिया-बिस्तरा समेट रफ़ूचक्कर हो जाना पड़ा। मज़दूर अपने जायज हक़ अधिकार के लिए शांतिपूर्ण ढंग से अपना संघर्ष कर रहे हैं। ऐसे में इस तरह की पंचायत लगवाना कंपनी की बौखलाहट को ही दिखलाता है। उसी दिन दोपहर को मज़दूरों ने कमला नेहरू पार्क में अपनी आम सभा की और फिर वहाँ से लेकर लघु सचिवालय तक आक्रोश रैली निकाली और गुड़गाँव के विधायक के पास मुख्यमंत्री के नाम ज्ञापन दिया। मज़दूरों ने कहा कि पिछले 45 दिनों से हम शान्तिपूर्वक धरना-प्रदर्शन कर रहे हैं। आज तक न तो कम्पनी के काम में बाधा डाली और न ही आम नागरिक ने इसका विरोध नहीं किया।

असल में पिछले कुछ दिनों से इलाके के तथाकथित जनप्रतिनिधि जनता के नाम पर वास्तव में कम्पनी के इशारों पर आन्दोलन तोड़ने की कोशिशें कर रहे हैं। ऐसी ही हरकतें इन ताक़तों ने मारुति के आन्दोलन के समय भी की थीं।

हरियाणा की खट्टर सरकार होण्डा कम्पनी के पक्ष में

22 नवंबर को 17 किलोमीटर पैदल यात्रा मजदूरों ने मानेसर के औद्योगिक क्षेत्र में रैली निकालकर उपायुक्त कार्यालय के मार्फ़त मुख्यमंत्री खट्टर को ज्ञापन सौंपा था। 27 नवम्बर को फिर मज़दूरों ने बड़ी बाइक रैली के साथ ही गुड़गाँव में हीरो चौक से लघु सचिवालय तक जुलूस निकालकर एसडीएम को ज्ञापन दिया। इसमें होण्डा के अलावा कई दूसरी यूनियनों और फ़ैक्ट्रियों के मज़दूर शामिल हुए। फिर 25 दिसम्बर को आन्दोलन के 52वें दिन गुड़गाँव में रैली निकालकर मामले को मण्डल आयुक्त के सामने लाया गया। लेकिन अब तक सरकार ने मज़दूरों की बात ही नहीं सुनी है।

दुष्यन्त चौटाला का मज़दूर विरोधी रवैया भी उजागर

बीते 19 नवम्बर को मज़दूरों के प्रतिनिधि दल ने हरियाणा के उप मुख्यमंत्री दुष्यन्त चौटाला, जोकि श्रम व रोज़गार तथा उद्योग और वाणिज्य मंत्री भी हैं, से मुलाकात कर कार्रवाई की माँग की थी। चौटाला ने जल्द कार्रवाई का आश्वासन भी दिया, लेकिन आज तक कुछ भी नहीं हुआ। दोबारा 22 दिसम्बर को कुछ मज़दूर चौटाला से मिलने गये, लेकिन फिर से निराशा ही हाथ लगी। चौटाला ने सिर्फ़ हरियाणा के मज़दूरों

(पेज 2 पर जारी)

होण्डा, शिवम व अन्य कारख़ानों के संघर्ष को पूरी ऑटो पट्टी के साझा संघर्ष में तब्दील करना होगा

मन्दी के नाम पर छँटनी का कहर केवल होण्डा के मज़दूरों पर ही नहीं बल्कि गुड़गाँव और उसके आसपास ऑटोमोबाइल सेक्टर की कंसाई नैरोलक, शिरोकी टेक्निको, मुंजाल शोवा, डेन्सो, मारुति समेत दर्जनों कम्पनियों में लगातार जारी है। दिहाड़ी, पीस रेट, व ठेका मज़दूर तो दूर स्थायी मज़दूर तक अपनी नौकरी नहीं बचा पा रहे हैं। होण्डा, शिवम, कंसाई नैरोलेक आदि कई कम्पनियों के स्थाई श्रमिक निलम्बन, निष्कासन, तबादले से लेकर झूठे केस तक झेल रहे हैं। होण्डा समेत कई कारख़ानों में चल रहे संघर्षों में कैज़ुअल मज़दूरों के समर्थन में उतरे जुझारू मज़दूरों को निलम्बित किया गया है।

इन संघर्षों को और व्यापक तथा धारदार बनाने के लिए ज़रूरी है कि हम इस वक़्त उत्पादन के तौर-तरीक़ों में आये बदलावों और उसकी वजह से आयी मन्दी के सवाल को अच्छी तरह समझ लें।

आर्थिक मन्दी क्या होती है?

मन्दी कोई कुदरत का कहर नहीं है, जिसे झेलने के अलावा हमारे पास कोई और विकल्प ना हो। और न ही इस मन्दी का शिकार मालिक वर्ग है, जैसा कि पेश किया जाता है। इसका शिकार हम और आप यानी मज़दूर वर्ग है। सितम्बर 2019 तक के आँकड़ों के मुताबिक़ करीब 52 हज़ार करोड़ रूपए की 35 लाख गाड़ियाँ शोरूम में पड़ी सड़ रही थीं। कारख़ानों और गोदामों में और भी अधिक गाड़ियाँ बेकार पड़ी हैं। मन्दी की वजह से ऑटो सेक्टर समेत अनेक क्षेत्रों में बहुत-सी कम्पनियों ने उत्पादन कम कर दिया है। कई कारख़ाने आंशिक या पूरी तरह से बन्द किये जा रहे हैं। महिन्द्रा, मारुति, होण्डा, हीरो, टाटा, बजाज आदि कम्पनियों के उत्पादन में भारी गिरावट आयी है। इसकी वजह से बेरोज़गारी, कामबन्दी, छँटनी, तालाबन्दी के सभी पुराने रिकॉर्ड टूटते जा रहे हैं। बाज़ार में माल पड़ा है लेकिन ख़रीदार नहीं हैं।

आइए, पहले इस मौजूदा मन्दी को समझा जाये। ऑटो सेक्टर में अधिकतर गाड़ियाँ, करीब 60 प्रतिशत तक़ कर्ज़ पर ख़रीदी जाती हैं। कर्ज़ देने वालों में बैंक और फ़ाइनेन्स कम्पनियाँ हैं। लेकिन आजकल बैंक भी क़र्ज़ देने से पहले पक्का हो लेना चाहते हैं कि ग्राहक के पास कर्ज़ा चुकाने की क्षमता है या नहीं। आज के हालात में, जब भारी संख्या में लोगों के पास पक्का रोज़गार ही नहीं है तो उन्हें बैंक से क़र्ज़ मिलना मुश्किल होता है। ऐसे में फ़ाइनेंस कम्पनियाँ (ग़ैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ) ऐसे ग्राहकों को क़र्ज़ मुहैया करवाती हैं जिन्हें बैंक क़र्ज़ नहीं देते हैं। वे अपनी साख पर बैंक से क़र्ज़ लेकर आगे ग्राहकों को महँगे ब्याज पर लोन देती हैं। फ़ाइनेंस कम्पनियों द्वारा पहले से लिया गया क़र्ज़ रियल एस्टेट में बिक्री न होने के कारण तथा ग्राहकों को दिये गये क़र्ज़ वापस न होने कारण खुद संकट में फंस गया है। अब बैंकों ने इन पहले के कर्ज़ न चुकाने के कारण फ़ाइनेंस कम्पनियों को भी पैसा देना बन्द कर दिया है। इस तरह फ़ाइनेंस कम्पनियाँ बर्बाद होना शुरू हुईं, और अब पूरी अर्थव्यवस्था ही धीमी पड़ गई है। मन्दी रियल एस्टेट के बाद अब ऑटो सेक्टर व अन्य सेक्टरों में फैल रही है। बाज़ार गाड़ियों से अँटता जा रहा है और क़ारख़ानों में उत्पादन ठप्प होता जा रहा है। उत्पादन के सभी बुनियादी सेक्टरों में गिरावट रुकने का नाम नहीं ले रही है और पूरी अर्थव्यवस्था ही मन्दी के भँवर में धँसती जा रही है।

मन्दी का बुनियादी कारण क्या है?

पूँजीवाद में पूँजीपति दो तरह की होड़ में उलझे रहते हैं। पहली, क़ीमत कम कर बाज़ार में टिके रहने की होड़ जो पूँजीपतियों के बीच होती है। दूसरी, मज़दूर और पूँजीपति के बीच, मज़दूर द्वारा पैदा किये गये मूल्य को हड़पने के लिए होती है। पूँजीपति क़ीमतों को कम रखने की होड़ में और मज़दूरों द्वारा पैदा किये गये बेशी मूल्य में मज़दूरों का हिस्सा कम करने के लिए नयी मशीनरी लाता है, मज़दूरों के काम के घण्टे व सघनता बढ़ाता चला जाता है। दूसरी तरफ़, वह वेतन में कटौती तथा मज़दूरों की छँटनी करने के लिए नये-नये क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी पैंतरे आज़माता रहता है। सभी मज़दूर अनुभव से जानते हैं कि मालिक लगातार उन्नत से उन्नत मशीन का प्रयोग कर मज़दूरों को काम से बाहर निकालता है। क़ीमत कम करने की होड़ में सभी उद्योगों में मशीनीकरण बढ़ता ही जाता है। इस तरह उत्पादन में मशीनरी का हिस्सा बढ़ने की वजह से माल उत्पादन की प्रक्रिया में मज़दूर की श्रमशक्ति अनुपात में कम होती चली जाती है। चूँकि मुनाफ़ा मज़दूर की श्रमशक्ति से पैदा होता है इसलिए इस प्रक्रिया से मुनाफ़े की दर गिरती चली जाती है। गिरती हुई दर का प्रभाव अतिउत्पादन के रूप में प्रकट होता है। यानी माल है पर ख़रीदार नहीं है। इस गिरती दर को रोकने के लिए ही मालिक छँटनी करते हैं, वेतन कम करते हैं। इसकी वजह से मज़दूरों के कंगालीकरण की प्रक्रिया तेज़ हो जाती है और उनकी ख़रीदने की क्षमता घटती है, जबकि दूसरी तरफ़ बाज़ार सामानों से अँटा पड़ा होता है। अगले चक्र में मालिक उत्पादन को कम करता चला जाता है और अपने मुनाफ़े को बचाने के प्रयास में मज़दूरी में कटौती, कामबन्दी, छँटनी, तालाबन्दी करता है। इसी प्रक्रिया से आज भारत में मन्दी गहराती जा रही है। जो आने वाले समय में इससे भी बड़े संकट की ओर इशारा कर रही है।

आर्थिक मन्दी का समाधान मज़दूरों-मेहनतकशों की सत्ता है! जब तक पूँजीवाद रहेगा! मेहनतकश बर्बाद रहेगा!

आर्थिक संकट मुनाफ़ा आधारित पूँजीवादी समाज के बुनियादी टकरावों की उपज है। इसका आधार यह है कि उत्पादन तो सामाजिक है परन्तु उसके फल निजी तौर पर मालिक वर्ग द्वारा हड़प लिये जाते हैं। यानी फ़ैक्ट्री में मज़दूर जो भी पैदा करता है, उसकी मेहनत के उत्पाद पर मालिक का क़ब्ज़ा होता है। जैसे ऑटोमोबाइल सेक्टर में बन रही गाड़ियों या गारमेण्ट सेक्टर में बन रहे कपड़े, इन उद्योगों के मालिकों के होते हैं। और मज़दूर को मालिक महज़ ज़िन्दा रहने योग्य वेतन देकर लूट को जारी रखता है। इस कुचक्र को तोड़ने का एकमात्र तरीका मुनाफ़ा आधारित समाज को ख़त्म कर एक ऐसी सत्ता की स्थापना है जिसमें सामाजिक उत्पादन का सामूहिक मालिकाना हो और उसके फलों का मालिक पूरा समाज हो। मौजूदा व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव लाकर मज़दूरों-मेहनतकशों की सत्ता क़ायम करके ही ऐसा सम्भव हो सकता है।

लेकिन जबतक मज़दूर वर्ग की सत्ता नहीं आती है, तब तक हम क्या करें?

हमें अपने संघर्षों को मज़बूत करना होगा। रोज़मर्रा के संघर्षों के साथ-साथ आगे की लम्बी लड़ाई के लिए भी अपनेआप को तैयार करना होगा। हमें अपने सामने खड़ी चुनौतियों को साफ़-साफ़ पहचानना होगा।

एक तरफ कम्पनियाँ मन्दी का रोना रो रही है और दूसरी तरफ़ नयी भरती भी कर रही है। पुराने कुशल कैज़ुअल मज़दूरों को पक्का करने के बजाय बड़ी तादाद में कुशल मज़दूरों की छँटनी कर रही है। सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंग रही। बल्कि पहले के संघर्षों और कुर्बानियों की बदौलत हासिल किये क़ानूनी अधिकारों को भी नये लेबर कोड के तहत श्रम क़ानूनों में बदलाव करके एक-एक कर छिना जा रहा है।

मालिकों ने उत्पादन को मदर और वेण्डर कम्पनी के साथ-साथ कई प्लाण्टों और इलाक़ों में बाँट दिया है, और मज़दूरों को एक कारख़ाने की चौहद्दी से निकालकर पूरे सेक्टर में बिखरा दिया है। वसकी वजह से आज ज़्यादातर मज़दूर आन्दोलन मालिकों और प्रबंधन के आगे टिक नहीं पा रहें हैं। पिछले एक दशक में मारुति, होण्डा, औमैक्स, ऑटोमैक्स, स्पीडोमैक्स, हीरो, शिवम से लेकर डाइकिन के आन्दोलन इस बात को दिखाते हैं कि कारख़ाना आधारित संघर्ष के बूते पर ऑटोमोबाइल सेक्टर और पूरी औद्योगिक पट्टी में मालिकों और प्रशासन के ख़िलाफ़ जीत पाना बेहद मुश्किल हो चुका है। बुनियादी समस्या किसी एक कारख़ाने से जुड़ी नहीं है, बल्कि ऑटो सेक्टर समेत बहुत से सेक्टरों से जुड़ी है। किसी एक कारख़ाने की चौहद्दी में मन्दी का सामना करने के बारे में सोचा तक नहीं जा सकता। दूसरे, मज़दूरों के ख़िलाफ़ सिर्फ़ उनके कारख़ाने के मालिक नहीं बल्कि गुड़गाँव-रेवाड़ी-नीमराणा क्षेत्र के तमाम मालिक अपने इंडस्ट्रियल एसोसिएशन में और वर्गीय तौर पर एकजुट हैं। सत्ता के सभी अंग उन्हीं के पक्ष में खड़े हैं। मज़दूरों के पास केवल अपनी एकता और संख्याबल की ताक़त है। मगर अभी वह बिखरी हुई है।

श्रम विभाग, पुलिस, प्रशासन, सरकार, बिकाऊ मीडिया और इस लूट में शामिल तमाम ठेकेदार और तथाकथित जनप्रतिनिधियों का नापाक गँठजोड़ खुलेआम मालिकों की सेवा में खड़ा है। श्रम न्यायालयों से लेकर हाई कोर्ट व सुप्रीम कोर्ट तक उन्हीं की ओर हैं। जहाँ मालिकों का पक्ष कमज़ोर हो, वहाँ फ़ैसले बरसों तक लटका दिये जाते हैं।

राज्य और केन्द्र की सरकारें और पूँजीपतियों की पार्टियाँ मज़दूर आन्दोलनों को कुचलने के लिए धर्म-जाति-क्षेत्र-भाषा आदि के ज़रिए अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति पर चलते हुए मज़दूरों-मेहनतकशों के बीच तरह-तरह के बँटवारे पैदा करने के लिए रोज़ नयी से नयी चाल चल रही हैं।

आज महज़ अर्ज़ियों, माँगपत्रकों, वार्ताओं, प्रतीकात्मक जनसभाओं, कार्रवाइयों, प्रदर्शनों आदि से प्रबन्धन और प्रशासन के गँठजोड़ पर ज़्यादा असर नहीं पड़ने वाला। ऐसे में श्रम की ताक़तों को एकजुट होकर जनता के बीच जुझारू तरीके से अपना पक्ष लेकर जाना होगा। आम आबादी को अपनी माँगों से अवगत ही नहीं करवाना होगा बल्कि उन्हें अपने साथ खड़ा भी करना होगा।

अपने-अपने क़ारख़ानों में या अपने-अपने कमरे में चुपचाप मन्दी और छँटनी की इस समस्या से मुँह चुराकर हम अपना रोज़गार भी नहीं बचा पायेंगे। लगातार जारी शोषण व उत्पीड़न का मुकाबला करने के लिए और स्थायी, सुरक्षित और क़ानूनसम्मत रोज़गार का हक हासिल करने के लिए हमें सेक्टर के पैमाने पर और इलाक़ाई एकजुटता बनानी होगी। इस एकजुटता के बैनर तले मज़दूरों का जुझारू साझा संघर्ष ही एकमात्र विकल्प है और यही सफलता की गारण्टी है।

– ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (AICWU)

ये पूरे क्षेत्र के ऑटो सेक्टर के सभी मज़दूरों की साझा माँगें बनती हैं। इनके लिए साझा संघर्ष ही आगे बढ़ने का रास्ता है।

1. होण्डा व ऑटो सेक्टर के अन्य कारख़ानों के कैज़ुअल मज़दूरों को क़ानूनसम्मत स्थायी रोज़गार दो और वेतनसहित काम पर वापस लो!

2. होण्डा (मानेसर) और शिवम (बिनौला) व अन्य कारख़ानों के निलम्बित (सस्पेंड) व ट्रांसफ़र किये परमानेंट मज़दूरों को वेतनसहित काम पर वापिस लो!

3. मन्दी के नाम पर मज़दूरों की छँटनी बन्द करो! 'स्थायी रोज़गार के अधिकार को मूलभूत अधिकार में शामिल करो!'

4. 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' (बसनेगा) पारित करो! पक्के रोज़गार की गारण्टी दो। बेरोज़गार होने की सूरत में 10,000 रुपये मासिक बेरोज़गारी भत्ता दो!

5. जेल में बन्द मारुति के मज़दूरों को रिहा करो! आन्दोलनों के दौरान मज़दूरों पर किये गये झूठे मुक़दमे तत्काल वापस लो! उन्हें वेतनसहित काम पर लो। मज़दूर आन्दोलनों, यूनियन अधिकारों और यूनियन पदाधिकारियों पर हमले बन्द करो!

6. यूनियन और प्रबन्धन के बीच हुए सामूहिक माँगपत्रक समझौतों को सम्मानपूर्वक लागू करो और विवादों को निपटाओ!

7. ठेका प्रथा (तिमाही, छमाही, नौमाही, वार्षिक) ख़त्म करो! निश्चित अवधि रोज़गार (फ़िक्सड टर्म एम्प्लॉयमेंट - एफ़टीसी) पर तत्काल रोक लगाओ!

8. पहचान पत्र और सैलरी स्लिप पर काम की असली प्रकृति और कम्पनी व ठेकेदार का नाम दर्ज करो!

9. ट्रेनी व अप्रेण्टिस के नाम पर शोषण व स्थायी रोज़गार पर हमला बन्द करो!

10. ग़ैर-क़ानूनी छँटनी, निलम्बन, निष्कासन, तालाबन्दी व जबरिया रिटायरमेंट तथा मनमर्ज़ी तबादले (डिपार्टमेंट टू डिपार्टमेण्ट और प्लाण्ट टू प्लाण्ट) बन्द करो! मनमाने व ग़ैर-क़ानूनी नियमों द्वारा उत्पीड़न और शोषण तत्काल बन्द करो!

11. सभी श्रम क़ानूनों को लागू करो! श्रम क़ानूनों पर हमला बन्द करो! मज़दूर विरोधी श्रम क़ानूनों को वापस लो!

12. न्यूनतम वेतन 20,000 रुपये प्रतिमाह लागू करो!

13. काम के घण्टे 6 करो! जबरिया व सिंगल रेट पर ओवरटाइम करवाना बन्द करो! ओवरटाइम का डबल रेट से भुगतान सुनिश्चित करो!

14. सुरक्षा के पुख्ता इन्तज़ाम करो! दुर्घटना होने पर उचित मुआवज़ा दो!

15. पी.एफ. निकालने की प्रक्रिया को आसान करो! प्रबन्धन और ठेकेदारों की घपलेबाज़ी और चक्करबाज़ी पर रोक लगाओ!

साझी माँगें-साझी लड़ाई!
तभी होगी हमारी सुनवाई!
सेक्टरगत और इलाक़ाई एकता क़ायम करो!
मिलजुलकर संघर्ष करो!

बग़ावत की चिंगारी सुलगा गया गुज़रा साल

(पेज 1 से आगे)

स्वयं सेवक संघ के एजेण्डे के तहत एक के बाद एक निरंकुश क़ानून बनाए। इस कार्यकाल में मोदी सरकार की ओर से गृहमंत्री और भाजपा अध्यक्ष और हत्या के आरोपी तड़ीपार अमित शाह ने मोर्चा सँभाला। सबसे पहले कुख़्यात यूएपीए क़ानून में संशोधन करके सरकार ने अपना विरोध करने वाले किसी भी व्यक्ति को उसकी विचारधारा के आधार पर आतंकी घोषित करने की पूरी तैयारी कर ली और एनआईए को और ज़्यादा ताक़तवर बना दिया। उसके बाद आरटीआई क़ानून में भी संशोधन करके सूचना आयुक्त के पद की स्वायत्तता ख़त्म करके अपने अधीन कर लिया।

बीते साल मोदी सरकार ने हिन्दुत्व की अपनी घिनौनी अन्धराष्ट्रवादी राजनीति की बिसात में कश्मीर का जमकर इस्तेमाल किया। चुनाव से ठीक पहले अपनी लोकप्रियता गिरती देख सरकार ने संदिग्ध पुलवामा आतंकी हमले के बाद पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के बालाकोट पर फ़र्जी एयरस्ट्राइक करके अन्धराष्ट्रवाद का बवण्डर खड़ा करके लोगों की आँखों में जमकर धूल फेंकी जिसका असर चुनावी नतीजों में भी दिखा। जीत के बाद अपने दूसरे कार्यकाल में मोदी सरकार ने आर.एस.एस. के पुराने एजेण्डे को लागू करते हुए संविधान के अनुच्छेद 370 और 35ए में जम्मू एवं कश्मीर को दिये गये विशेष राज्य के दर्जे को छीन लिया। यही नहीं, जम्मू एवं कश्मीर का राज्य के रूप में अस्तित्व ही ख़त्म करके उसे दो केन्द्र शासित क्षेत्रों में तब्दील कर दिया गया। उसके बाद पिछले पाँच महीने से कश्मीर में अभूतपूर्व नाकेबन्दी के हालात बना दिये गये और मोबाइल फ़ोन, इण्टरनेट के साथ ही साथ लैण्डलाइन फ़ोनों तक को बन्द करवाकर कश्मीर को दुनिया से काटकर अँधेरे युग में पहुँचा दिया गया। कश्मीर की अर्थव्यवस्था तबाह करके कश्मीरी क़ौम के वजूद को ही नेस्तनाबूद करने का इन्तज़ाम कर दिया गया है। सरकार दावा कर रही है कि कश्मीर में अब शान्ति बहाल हो गयी है, लेकिन कश्मीर की हक़ीक़त से वाक़िफ़ कोई भी व्यक्ति यह जानता है कि यह तूफ़ान से पहले की शान्ति है।

लोकसभा चुनावों से पहले आर्थिक मोर्चे पर मोदी सरकार के फिसड्डीपन को छिपाने के लिए संघ परिवार की वानरसेना ने एक बार फिर राम मन्दिर की काठ की हाड़ी चुनावी आँच पर रखने की पुरज़ोर कोशिश की, हालाँकि उन्हें इस बार जनता की ओर से कोई ख़ास समर्थन नहीं मिला। संवैधानिक-न्यायिक प्रक्रिया की धज्जियाँ उड़ाकर बाबरी मस्जिद को ढहाने वाले संघ परिवार को मोदी सरकार के दूसरे कार्यकाल में एकाएक देश की न्यायिक प्रक्रिया पर पूरा यक़ीन हो गया। राम मन्दिर-बाबरी मस्जिद विवाद में उच्चतम न्यायालय की ओर से आये फ़ैसले ने भारत के बुर्जुआ संवैधानिक धर्मनिरपेक्षता की ताबूत पर आख़िरी कील गाड़ते हुए हिन्दुओं की आस्था के आधार पर उनके पक्ष में फ़ैसला सुनाया, हालाँकि इस फ़ैसले के बाद हिन्दुत्ववादी जिस तरह का साम्प्रदायिक माहौल बनाना चाहते थे वैसा बन नहीं पाया।

उसके बाद गृहमंत्री अमित शाह की अगुवाई में मोदी सरकार ने अगला दाँव नागरिकता संशोधन विधेयक के रूप में खेला। इस संशोधन के ज़रिये बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान से भारत में आने वाले ग़ैर-मुस्लिम शरणार्थियों को नागरिकता देने का प्रावधान कर दिया गया, लेकिन मुस्लिम शरणार्थियों को इस अधिकार से वंचित रखा गया। इस घोर साम्प्रदायिक क़ानून के ख़िलाफ़ पूरे देश में छात्रों-युवाओं, मुसलमानों और धर्मनिरपेक्षता में यक़ीन करने वाले नागरिकों का ग़ुस्सा सड़कों पर फूट पड़ा। जैसाकि अक्सर होता है, फ़ासिस्ट सत्ता द्वारा इस आन्दोलन का बर्बर दमन करने की नाकाम कोशिशें की गयीं, जिनकी वजह से इस आन्दोलन ने और बड़ा रूप धारण कर लिया। हालाँकि यह आन्दोलन स्वत:स्फूर्त ढंग से उभरा है, परन्तु इस आन्दोलन की सबसे बड़ी चुनौती अब आगे इसे सुनियोजित ढंग से चलाते हुए व्यापक फ़ासीवाद-विरोधी और व्यवस्था-विरोधी आन्दोलन में तब्दील करना है। इसके लिए क्रान्तिकारी ताक़तों को मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता के बीच एनआरसी व सीएए के ख़तरे के बारे में सघन प्रचारात्मक कार्रवाई करनी होगी और उन्हें इस आन्दोलन से जोड़ना होगा। साथ ही लोगों को यह बताने की ज़रूरत है कि इस आन्दोलन का मूलमंत्र 'संविधान बचाओ' जैसे रक्षात्मक नारे की बजाय फ़ासिस्ट ताक़तों को धूल चटाकर वास्तविक धर्मनिरपेक्षता पर आधारित नया समाज बनाना होना चाहिए। इसकी वजह यह है कि फ़ासिस्ट जो करतूतें अंजाम दे रहे हैं वे संविधान का उल्लंघन करके नहीं, बल्कि उसी में दिये गये प्रावधानों का इस्तेमाल करके कर रहे हैं।

पिछले साल मोदी सरकार द्वारा राजनीतिक मोर्चे पर उठाये गये अभूतपूर्व क़दमों को आर्थिक मोर्चे पर उसकी विफलता के सन्दर्भ में देखने पर ही तस्वीर पूरी होती है। अब इसमें कोई विवाद नहीं है कि भारत की अर्थव्यवस्था एक भयंकर मन्दी के भँवरजाल में फँस चुकी है। यहाँ तक कि मोदी सरकार के पूर्व मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविन्द सुब्रमण्यम को भी यह स्वीकार करना पड़ा कि अर्थव्यवस्था आईसीयू में पहुँच गयी है। अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्र से कोई उम्मीद नहीं नज़र आ रही है। मैन्युफ़ैक्चरिंग, ऑटोमोबाइल , इंफ़्रास्ट्रक्चर, बैंकिंग और नॉन-बैंकिंग वित्तीय सेक्टर एवं रियल एस्टेट तो कोमा में जा चुके हैं। पिछले साल अप्रैल-जून की तिमाही में जीडीपी वृद्धि की दर 5 फ़ीसदी रही जबकि जुलाई-सितम्बर की तिमाही में वह लुढ़ककर 4.5 फ़ीसदी रह गयी। यह पिछले छह सालों में सबसे कम है। कहने की ज़रूरत नहीं कि वास्तविक जीडीपी दर इससे भी कम होगी क्योंकि जीडीपी मापने के नए तरीक़े में गड़बड़ी की बात सर्वज्ञात है। इसके अलावा डॉलर के मुक़ाबले रुपये का मूल्य भी पिछले साल लगातार गिरता रहा। विदेशी व्यापार में भी सुस्ती छायी रही। बेरोज़गारी पिछले 45 वर्षों में सबसे अधिक रही है। हर साल की ही तरह पिछले साल भी महँगाई की वजह से आम मेहनतकश आबादी की कमर टूटती रही। इसके अलावा पिछले साल निजीकरण की गाड़ी को बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से चलाते हुए मोदी सरकार ने रेलवे, एचएएल, ऑर्डनांस फ़ैक्टरी और ओएनजीसी जैसे अहम सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के निजीकरण की दिशा में धकेलने के लिए अहम फ़ैसले लिये।

मज़दूर वर्ग के लिए गुज़रा साल भी जद्दोजहद भर रहा। अर्थव्यवस्था की इस ख़स्ता हालत का सबसे ज़्यादा ख़ामियाज़ा मज़दूर वर्ग को चुकाना पड़ा। औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूरों को काम के लाले पड़ गये और जिनके पास काम थे उनपर छँटनी की तलवार लगातार लटकती रही। मोदी सरकार ने पूँजीपतियों की ओर से मज़दूरों के अधिकारों पर सर्जिकल स्ट्राइक करते हुए 44 मौजूदा केन्द्रीय श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर चार संहिताएँ—मज़दूरी पर श्रम संहिता, औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता, सामाजिक सुरक्षा पर श्रम संहिता और औद्योगिक सुरक्षा एवं कल्याण पर श्रम संहिता—बनाने की दिशा में अहम क़दम उठाये। गत 20 नवम्बर को तीन पुराने श्रम क़ानूनों—औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926 और औद्योगिक रोज़गार अधिनियम 1946—को हटाकर उनकी जगह औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता (लेबर कोड ऑन इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स) को मंज़ूरी दे दी गयी जिसके तहत अब पूँजीपति मज़दूरों को क़ानूनी तरीक़े से 3 महीने, 6 महीने या सालभर के लिए ठेके पर रख सकता है और फिर उसके बाद उसे काम से बाहर निकाल सकता है। इसके अलावा पिछले साल मज़दूरी श्रम संहिता अधिनियम (कोड ऑफ़ वेजेज एक्ट) भी पारित किया गया जिसके लागू होने के साथ ही चार पुराने अधिनियमों – वेतन भुगतान अधिनियम 1936, न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, बोनस भुगतान अधिनियम 1965, और समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 को ख़त्म कर दिया गया। पिछले साल नवम्बर में मज़दूरी संहिता नियमावली का ड्राफ़्ट भी जारी कर दिया गया जिसमें 8 घण्टे के कार्यदिवस की बजाय 9 घण्टे के कार्यदिवस की सिफ़ारिश की गयी और आपातकालीन परिस्थितियों में 16 घण्टे तक काम कराने की छूट देने की सिफ़ारिश भी की गयी है। साफ़ है कि हर साल की ही तरह पिछले साल भी मोदी सरकार ने पूँजीपतियों को मनचाहे तोहफ़े देते हुए मज़दूरों के रहे-सहे अधिकारों को छीनकर उनकी हड्डियाँ तक निचोड़ने का पुख़्ता इंतज़ाम किया।

पिछले साल जहाँ एक ओर अनाजमण्डी जैसे हादसों में मज़दूर मुनाफ़े की हवस को शान्त करने के लिए आग में झोंके गये वहीं दूसरी ओर पूँजीवादी पितृसत्ता के नशे में चूर दरिन्दों द्वारा स्त्रियों को भी आग में झोंकने की कई बर्बर घटनायें सामने आयीं। विशेषकर हैदराबाद और उन्नाव में हुई हैवानगी के बाद देशभर में आक्रोश देखा गया। लेकिन ये घटनाएँ अपवाद नहीं थीं। पिछले साल की शुरुआत में ही बिहार के गया जिले में 16 साल की लड़की का दुष्कर्म के बाद सिर धड़ से अलग कर दिया गया और तेज़ाब डालकर पहचान मिटाने की कोशिश की गयी। फ़रवरी में मुंबई के माहिम इलाक़े एक पाँच साल की बच्ची से दुष्कर्म कर हत्या कर दी गयी। अप्रैल में यूपी के कन्नौज में रोंगटे खड़े कर देने वाली घटना हुई, जिसमें सात साल की लड़की की दुष्कर्म के बाद यातनाएँ देकर हत्या कर दी गई, उसके शरीर की 12 हड्डियाँ टूटी मिलीं। अप्रैल में ही कर्नाटक के रायचूर जिले में में एक महिला से दुष्कर्म के बाद उसे ज़िन्दा जला दिया गया। मई में यूपी के रामपुर में तीन दरिन्दों ने एक 17 साल की मूक-बधिर लड़की के साथ रेप किया और उसका वीडियो वायरल कर दिया। पिछले ही साल उन्नाव में भाजपा विधायक कुलदीप सिंह सेंगर ने पीड़िता को उसके परिवार सहित ख़त्म करने की साज़िश रची जो नाकाम रही। देशभर में उन्नाव की घटना के ख़िलाफ़ जनाक्रोश की वजह से वहाँ के पुलिस प्रशासन और न्यायपालिका पर भी दबाव पड़ा जिसका नतीजा यह हुआ कि सेंगर को निचली अदालत ने दोषी करार दिया और आजीवन कारावास की सज़ा सुनायी। लेकिन अभी भी पूर्व गृहराज्यमंत्री चिनमयानन्द को सज़ा नहीं हुई है। इसके अलावा नित्यानन्द तो देश छोड़कर ही भाग गया और इतना पैसा लेकर भागा कि एक टापू ख़रीदकर कैलासा नामक एक नया देश ही बना लिया।

लोगों को बाँटने की फ़ासिस्ट साज़िश के देशव्यापी प्रतिरोध को संगठित स्वरूप और दिशा देने की ज़रूरत

(पेज 1 से आगे)

अब ज़रूरत इस बात की है कि इस आन्दोलन को व्यापक और देशव्यापी नागरिक अवज्ञा आन्दोलन और सत्याग्रह की शक्ल दी जाये। छात्रों को कक्षाओं और परीक्षाओं के सामूहिक बहिष्कार का रास्ता पकड़ना चाहिए। कर्मचारियों का दफ़्तरों के बहिष्कार के लिए आह्वान किया जाना चाहिए। मज़दूर यूनियनों पर दबाव बनाया जाना चाहिए कि वे एकदिनी रस्मी हड़ताल का रास्ता छोड़कर लम्बी हड़तालों और घेराव के रास्ते पर उतरें और आम मज़दूरों में व्यापक प्रचार अभियान चलाकर उन्हें बताया जाना चाहिए कि एनआरसी जैसी चीज़ आम ग़रीबों के सामने कितनी मुश्किलें पैदा कर देगी। अगर आन्दोलन के लिए मोहल्ला कमेटियाँ बन पातीं तो लोगों को इस बात के लिए तैयार किया जा सकता था कि हर शहर की किसी सड़क या कचहरी-कलक्ट्रेट जैसे किसी स्थल को चुनकर वे सपरिवार बोरिया-बिस्तर सहित वहीं डेरा डाल दें। जैसा शाहीन बाग़ में हो रहा है। इस बात का भी अध्ययन किया जाना चाहिए कि सांतियागो या हांगकांग जैसे शहरों में लाखों की तादाद में प्रदर्शनकारी अपने प्रदर्शनों को हफ़्तों और महीनों तक कैसे जारी रख पाते हैं।

यह आन्दोलन स्वत:स्फूर्त है और इसका कोई संगठित क्रान्तिकारी नेतृत्व नहीं है, इसलिए ये सारी चीज़ें कठिन ज़रूर हैं, लेकिन इसमें सक्रिय प्रबुद्ध लोग और क्रान्तिकारी शक्तियाँ अगर इस बात को समझें और प्रयास करें तो ऐसा होना असम्भव भी नहीं है। संघर्ष के ऐसे रूप व्यापक जन-पहलक़दमी जागृत करने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होंगे। असफलता की चिन्ता किये बिना ऐसी कोशिशें ज़रूर की जानी चाहिए। अलग-अलग कोशिशें हो भी रही हैं।

गोरख पाण्डेय की एक प्रसिद्ध कविता की पंक्तियाँ हैं :

वे डरते हैं
किस चीज़ से डरते हैं वे
तमाम धन-दौलत
गोला-बारूद,
पुलिस-फ़ौज के बावजूद?
वे डरते हैं
कि एक दिन
निहत्थे और ग़रीब लोग
उनसे डरना
बन्द कर देंगे।

पिछले पाँच वर्षों के दौरान मोदी सरकार और संघी गुण्डों ने देशभर में जो आतंक फैला रखा था, हर तरह के विरोध को कुचलने के लिए गिरफ़्तारियों, झूठे मुक़दमों, हत्याओं और मॉब लिंचिंग के ज़रिये जो डर का माहौल पैदा किया था, उसे इस आन्दोलन ने एक झटके में हवा में उड़ा दिया है। अब डरने की बारी फ़ासिस्टों की है। उनका डर दिख भी रहा है। लेकिन लोगों को ज़रा भी असावधान नहीं होना चाहिए, क्योंकि अपनी बौखलाहट में ये जनद्रोही किसी भी तरह की घृणित हरकत कर सकते हैं। जागते और जगाते रहना होगा, और अपनी एकजुटता में दरार डालने की हर कोशिश को नाकाम करते रहना होगा।

आज़ादी के बाद का सबसे बर्बर और साम्प्रदायिक देशव्यापी पुलिसिया दमन

आज़ादी के बाद इस देश के हुक्मरानों ने सैकड़ों बार अपनी अवाम का ख़ून बहाया है। साम्प्रदायिक पुलिसिया दमन की ख़ूनी कहानियाँ मेरठ-मलियाना-भागलपुर से लेकर '84 के सिख दंगों तक अनगिनत हैं। लेकिन एक साथ देश के अनेक हिस्सों में जिस तरह से इस बार सत्ता ने दमन और नफ़रत का खेल खेला है, वह अभूतपूर्व है। ख़ुद पर लगे दंगा भड़काने के सारे आरोपों को मुख्यमंत्री बनते ही वापस ले लेने वाले आदित्यनाथ ने जैसे उत्तर प्रदेश के मुसलमानों के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ दिया है।

पुलिस अक्सर साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं में निष्क्रिय रहकर भीड़ को अल्पसंख्यकों पर हमले करने देती रही है। या भीड़ को तितर-बितर करने के लिए लाठी-गोली चलाने में अल्पसंख्यकों पर जानबूझकर ज़्यादा से ज़्यादा नुक़्सान पहुँचाने के लिए हमला करती है।

लेकिन इस बार योगी आदित्यनाथ की पुलिस ख़ुद दंगाई, हत्यारी और बलात्कारी भीड़ बन गयी है। ज़ाहिर है कि उन्हें ऊपर से बेख़ौफ़ रहने के निर्देश थे और इसके साथ मिलकर लम्बे समय से फैलाये साम्प्रदायिक ज़हर और नफ़रत के असर में पुलिस ही नहीं, सीआरपीएफ़ और रैपिड ऐक्शन फ़ोर्स के जवानों ने भी सारी हदें पार कर दीं। यह एक बेहद ख़तरनाक स्थिति है।

इससे पहले अनेक प्रदर्शनों में बड़े पैमाने पर हिंसा, तोड़फोड़ और आगज़नी हुई है लेकिन योगी सरकार दफ़ा 144 की पाबन्दी को मार्शल ला की तरह लागू कर रही है। प्रदर्शनकारियो को दंगाई और आतंकवादी कहकर उनसे दुश्मन की तरह बर्ताव किया जा रहा है। गिरफ़्तार लोगों को जेल भेजने से पहले थानों में ले जाकर बुरी तरह पीटा गया। बुज़ुर्गों और महिलाओं तक को बुरी तरह मारा गया। लखनऊ में सम्मानित ऐक्टिविस्टों, मो. शोएब, एस.आर. दारापुरी, सदफ़ जाफ़र, रॉबिन वर्मा, दीपक कबीर आदि को न केवल झूठे आरोपों में गिरफ़्तार किया गया बल्कि उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया और निचली अदालत से उनकी ज़मानत भी ख़ारिज कर दी गयी।

योगी की पुलिस ने हैवानियत की सारी हदें पार करते हुए मुज़फ़्फ़रनगर में अनाथ बच्चों के एक मदरसे से क़रीब 100 बच्चों को ज़बरन भीतर घुसकर गिरफ़्तार किया और थाने में उनके साथ पाशविक बलात्कार किया। बड़े पैमाने पर औरतों के साथ बदसलूकी की गयी। बनारस में भी अनेक प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्ताओं और छात्रों को झूठे आरोपों में गिरफ़्तार किया गया। यहाँ के मुस्लिम मोहल्लों में भी पुलिस ने मारपीट और लूटपाट का ताण्डव मचाया। कानपुर, गोरखपुर, बहराइच सहित अनेक शहरों की भी यही कहानी है। कानपुर में तो जिन लोगों को पुलिस की गोलियाँ लगी हैं, उन्हें ही अब अभियुक्त बनाकर एफ़आईआर दर्ज की जा रही है। पहले नंगई से झूठ बोलने के बाद अब पुलिस जगह-जगह गोली चलाने की बात मान रही है।

ज़ाहिर है कि ऊपर से आदेश मिले बिना पुलिस इस स्तर पर नहीं उतर सकती थी। यह एक बेहद ख़तरनाक स्थिति है। जो लोग आज नफ़रत के नशे में ख़ुश हो रहे हैं कि "मुल्लों" को सबक़ सिखाया जा रहा है, उन्हें भी डरना चाहिए। पुलिस उनकी नहीं है। पुलिस सरमायेदारों और सत्ताधीशों के हाथ का डण्डा है। आपके सिर पर भी गिरेगा देर-सबेर!

मुज़फ़्फ़रनगर और मेरठ में बर्बर पुलिस दमन की आँखों देखी रिपोर्ट

– लता कुमारी

(27 दिसम्बर को जाँच-पड़ताल करने वाली एक टीम के साथ मैं मुज़फ़्फ़रनगर और मेरठ गयी थी। इस टीम में सुप्रीम कोर्ट के वकील, इम्तियाज़ हाशमी और मोहम्मद रेहमान के साथ मेधा पाटकर, दिल्ली के दो वकील सन्दीप पाण्डेय और विमल के अलावा सामाजिक कार्यकर्ता फ़ैज़ल ख़ान भी शामिल थे।)

व्यवस्था ने लोगों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। स्वयं आगज़नी और अराजकता फैलाकर अख़बारों के माध्यम से शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर दंगे का ठीकरा फोड़ा जा रहा है। पूरी तरह से बिकी हुई मीडिया गला फाड़-फाड़कर बता रही है कि मुसलमानों ने दंगा भड़काया है, बाहर से आये लोग शामिल थे और ऐसी ही हज़ारों बे-सिर-पैर की बातें। चाहे मुज़फ़्फ़रनगर हो, मेरठ हो या जामिया, स्पष्ट तौर पर देखने में आया है कि पुलिस के साथ मिले नक़ाबपोश पत्थरबाज़ी या हिंसा की शुरूआत करते हैं और फिर पुलिस इस सुनियोजित हिंसा की आड़ में प्रदर्शनकारियों पर आँसू गैस के गोलों, डण्डों, पत्थरों और लाठियों से हमला करती है। गुजरात के दंगों की तरह ही सभी जगह हिंसा सुनियोजित और पूर्व निर्धारित योजना के तहत भड़कायी गयी और फिर बर्बर दमन किया गया। हम यहाँ पर बेहद छोटे में मुज़फ़्फ़रनगर और मेरठ की घटनाओं का आँखो देखा हाल रखेंगे। 27 दिसम्बर को गलियों में घूम-घूमकर हमने लोगों से बात की है, आहत लोगों और मृतकों के घर गये और उनकी आपबीती सुनकर आ रहे हैं।

व्यवस्था के तथाकथित पहरेदारों और न्याय व्यवस्था बनाने वालों में कितनी हैवानियत और दरिन्दगी छुपी है वह 20 दिसम्बर को मुज़फ़्फ़रनगर और मेरठ की सड़कों पर उजागर हो गया है। आरएसएस और बजरंगदल के साथ "जय श्री राम" और "हरहर महादेव" का नारा लगाते पुलिसकर्मी आगज़नी, तोड़-फोड़ का ताण्डव कई घण्टों तक सड़कों पर करते रहे। किसी को भी नहीं बख़्शा गया, चाहे 85-90 साल के बुज़ुर्ग हों, 8 साल के नन्हे बच्चे या महिलाएँ। सभी पर अपशब्दों के साथ लाठियों की बारिश की गयी, उन्हें लहूलुहान किया गया और अनगिनत को जेलों की सलाख़ों के पीछे धकेला गया। यह 150-200 पुलिसकर्मियों, बजरंगदल और आरएसएस कार्यकर्ताओं का आधी रात को निकला हुजूम किस क़दर बीमार और पतित मानसिकता का था, इसका अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि 8 से 12 साल के छोटे-छोटे मासूम बच्चों को पीटते हुए पास के छोटे राम कॉलेज में ले जाया गया और वहाँ उनके कपड़े उतरवाकर, उन पर पानी डालकर डण्डों से पीटा गया। 90 साल के हामिद हसन को 6-7 पुलिसकर्मी और आरएसएस के गुण्डे बन्दूक़ की मूठ से मारते रहे और उन्हें कहा कि "मुसलमानों की जगह पाकिस्तान या क़ब्रिस्तान है"। घर में महिलाओं को भी पुलिसकर्मियों ने मारा और लोगों को लहूलुहान घसीटकर हिरासत में ले गये।

मुज़फ़्फ़रनगर

20 दिसम्बर को जुम्मे की नमाज़ के बाद सीएए और एनआरसी के विरोध में शहर में शान्तिपूर्ण प्रदर्शन का कार्यक्रम रखा गया था। नमाज़ के बाद सभी कुछ शान्तिपूर्ण चल रहा था और शहर के अलग-अलग इलाक़ों से लोग मीनाक्षी चौक पर एकत्रित हो रहे थे। साढ़े तीन-चार बजे के लगभग यह प्रदर्शन समाप्त हो गया था और लोग अपने-अपने घरों को लौट रहे थे। तभी महावीर चौक से हिंसा की शुरुआत हुई और पुलिस वाले दौड़ते हुए सभी ओर से प्रदर्शनकारियों पर टूट पड़े। पुलिस का कहना है कि महावीर चौक पर प्रदर्शनकारियों ने हिंसा की, लेकिन तथ्य है और सीसीटीवी कैमरा में भी रिकॉर्ड है कि हिंसा की शुरुआत करने वाले कुछ देर पहले बीजेपी के सांसद संजीव बलियान के साथ देखे गये थे। किदवई नगर से आ रही भीड़ का रास्ता बदला गया और फिर हिंसा की शुरुआत हुई। पुलिस का आरोप है कि प्रदर्शनकारियों ने सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति पहुँचायी। यह काम भी संजीव बलियान के लोगों ने किया और सार्वजनिक संपत्ति से कहीं ज़्यादा चौक की दुकानों को जलाया गया है। यदि हिंसा फैलाने वाली भीड़ मुसलमानों की थी तो उन्होंने सिर्फ़ मुसलमानों की दुकानों को आग क्यों लगायी? चुन-चुनकर मुसलमानों की दुकानों को आग लगायी गयी है। सुनियोजित हिंसा भड़काने के बाद सड़कों पर जो भी मिल रहा था उन्हें बुरी तरह पीटा गया। मोहम्मद असद, मस्जिद के इमाम को बुरी तरह पीटा गया और 2 दिनों तक हिरासत में रखा गया। कोई दवा-इलाज नहीं कराया गया और छूटते समय सख़्त हिदायत दी गयी कि किसी भी सरकारी अस्पताल में इलाज नहीं कराना है। इलाज के बाद पता चला उनका दाहिना हाथ टूट गया है और पूरे बदन में गम्भीर चोटें आयी हैं। पुलिस फ़ायरिंग में दो लोगों की जानें गयी हैं। नूर मोहम्मद, एक मज़दूर, अपने काम से घर लौट रहा था। लोगों का कहना है कि वह पुलिस की गोली का शिकार हो गया। ऐसे एक और जान गयी है।

शाम की आगज़नी, दुकानों और घरों की तोड़-फोड़ करने के बाद रक्तपिपासुओं का यह हुजूम आधी रात को आतंकित करने वाले नारे लगाता हुआ सड़कों पर उतरता। इस बार चुन-चुनकर उन घरों में घुसा जहाँ से पैसे मिलने की पूरी सूचना थी, दो प्रमुख घरों में लूटपाट की जो घटना हुई है उन दोनों घरों में बेटियों के ब्याह की तैयारी हो रही थी। कई तोले सोना पुलिस और आरएसएस के गुण्डे उठा ले गये और बाक़ी सारा सामान तोड़-फोड़ दिया। साथ ही मदरसों और यतीमख़ानों में भी दरवाज़ा तोड़कर यह वहशियों का झुण्ड पुलिस वर्दी और बिना पुलिस वर्दी में बच्चों को बेहद बुरी तरह मारता हुआ हिरासत में ले गया। 170 बच्चे जेल में भेजे गये। कई इनमें से छूट गये हैं लेकिन अभी भी कुछ जेल में हैं।

मेरठ

मेरठ में पुलिस का दमन सबसे बर्बर रहा। अभी तक 6 आधिकारिक मौतों की पुष्टि हो चुकी है लेकिन मरने वालों की संख्या इससे कहीं ज़्यादा है क्योंकि राज्य प्रशासन ने सख़्त निर्देश जारी किया है कि किसी भी निजी अस्पताल में गोली लगी चोट का इलाज नहीं किया जायेगा। ऐसी स्थिति में डॉक्टरों का लाइसेंस रद्द कर दिया जायेगा। साथ ही किसी भी सरकारी अस्पताल में गोली लगे लोगों का दाख़िला नहीं लिया जा रहा है। डॉक्टर रातों को छुप-छुपकर घरों में जा रहे हैं और कई ऑपरेशन भी घरों में किये जा रहे हैं। गोली से घायल लोगों की कुल संख्या 17 है। हमें इसकी जानकारी वहाँ के एक सामाजिक कार्यकर्ता ने दी। डर और पुलिसिया ख़ौफ़ का ये आलम है कि लोग जगह-जगह गलियों में आग जलाकर रात काट रहे हैं क्योंकि पुलिस ने कुल 1500 ज्ञात और 3000 अज्ञात एफ़आईआर दर्ज किये हैं। गलियों की बिजली काट दी जाती है और लोगों को उठाया जा रहा है। इसलिए लोग रात गलियों में काट रहे हैं।

मेरठ जहाँ सबसे अधिक भयानक पुलिसिया दमन हुआ है वहाँ किसी भी प्रदर्शन की कोई योजना नहीं थी। लोग जुम्मे की नमाज के बाद लौट रहे थे, बिना किसी उकसावे के पहले भीड़ पर पुलिस ने लाठियाँ बरसानी शुरू की और फिर गोलियाँ चलायी। मरने वालों में अलीम, उम्र 24 साल, ढाबे पर रोटियाँ बनाता था और घर का समान लेकर लौट रहा था। पुलिस उन पर निसाना साध रही थी जो जीन्स नहीं पहने थे। मोहम्मद मोहसीन, उम्र 32 साल कबाड़ी का काम करता था, सामान लेने बाज़ार गया था, पुलिस की गोली लगने पर वह गिरा और कुछ लोग उसे उठाकर डॉक्टर के पास ले गये। उसने इलाज करने से मना कर दिया, फिर दूसरे अस्पताल ले गये वहाँ भी मना किया। अन्त में सरकारी अस्पताल ले जाने पर डॉक्टर ने कहा कि मौत हो चुकी है। ऐसी ही स्थिति बाक़ी के मृतकों की रही। एम्बुलेंस बुलाने पर कोई एम्बुलेंस नहीं आयी। ई-रिक्शा चलाने वाला मोहम्मद आसिफ़, उम्र मात्र 20 साल, कबाड़ का काम करने वाला मोहम्मद मोहसीन, इनके घर वालों को शरीर देने में बेहद टाल-मटोल की गयी और चुप-चाप से दफ़नाने के निर्देश दिये गये। ज़हीर अहमद बस अपने घर से बाहर बीड़ी के लिए गये थे और पुलिस की गोली का शिकार हो गये। उत्तर प्रदेश पुलिस इन सभी को दंगाई और आतंकवादी बता रही है। मोहम्मद आसिफ़ जो दो साल से मेरठ में ई-रिक्शा चला रहा था, उसकी जेब में आधार कार्ड था। यह आधार कार्ड उसकी माँ ने तब बनवाया था जब वह अपने तीन बच्चों को लेकर दिल्ली में मज़दूरी करती थी। फिर वे मेरठ लौट आये थे। अभी पुलिस इस आधार कार्ड के बिना पर कह रही है कि मोहम्मद आसिफ़ यह पूरा दंगा भड़काने का मास्टर माइण्ड था। इन मृतकों के परिजनों में बेहद रोष है, रुंधे गले से कह रहे थे एक तो हमने अपने घर के कमाने वाले खोये हैं, वहीं समाज में इन्हें आतंकवादी बताया जा रहा है। इनके बच्चों और परिवार वालों का जीवन दूभर हो जायेगा इस बदनामी के साथ।

हमने बहुत से मुस्लिम भुक्तभोगियों के साथ ही अनेक हिन्दुओं से भी बात की और लगभग सभी का कहना था कि मुज़फ़्फ़रनगर की तरह ही मेरठ में भी हिंसा भड़काने का काम पुलिस ने किया और फिर दंगे का अरोप लोगों पर थोप दिया गया।

अभी इन दोनों शहरों में लोगों के बीच ग़ुस्सा और असंतोष सुलग रहा है। पुलिस की बर्बरता देखकर लोग अभी चुप हैं लेकिन सभी इन्साफ़ की माँग कर रहे हैं। सभी इन्साफ़पसन्द नागरिकों को इस मेहनतकश आबादी का साथ देना होगा और एक धर्म के लोगों को बदनाम करने की व्यवस्था और पुलिस की साज़िश का पर्दाफ़ाश करना होगा।

नागरिकता संशोधन क़ानून (सीएए) और राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) क्या हैं और इनसे आप कैसे प्रभावित होंगे?

1) सीएए आख़िर है क्या?

नागरिकता संशोधन क़ानून 2019 के तहत अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश के हिन्दू, सिख, पारसी, जैन, ईसाई और बौद्ध धर्म को मानने वालों में से जो लोग 31 दिसंबर 2014 के पहले भारत में प्रवेश कर चुके हैं वे भारत की नागरिकता पाने के हक़दार हैं। इस संशोधन में इन तीन देशों के मुस्लिमों और भारत के अन्य पड़ोसी देशों के सभी लोगों को नागरिकता पाने के अधिकार से वंचित रखा गया है। सरकार की दलील यह है कि यह संशोधन धर्म के आधार पर प्रताड़ना के शिकार शरणार्थियों को नागरिकता देने के लिए किया गया है और चूँकि इन तीन देशों में मुस्लिम बहुसंख्यक हैं इसलिए उनके लिए कोई प्रावधान करने की ज़रूरत नहीं है। परन्तु सरकार के पास इसका कोई जवाब नहीं है कि यदि उसका मक़सद धार्मिक प्रताड़ना के शिकार शरणार्थियों को नागरिकता देना था तो म्यांमार के रोहिंग्या मुस्लिमों, श्रीलंका के तमिलों, चीन के उइगर व तिब्बती लोगों, पाकिस्तान के अहमदिया, बलूच और शिया लोगों एवं अफ़ग़ानिस्तान के हज़ारा लोगों को नागरिकता देने के प्रावधान इसमें क्यों नहीं किये गये हैं? असलियत तो यह है कि सरकार आर.एस.एस. के हिन्दुत्व के एजेण्डे पर काम करते हुए साम्प्रदायिक आधार पर नागरिकता देकर मुस्लिम आबादी में ख़ौफ़ का माहौल पैदा करना चाहती है।

2) एनआरसी क्या है?

नागरिकता अधिनियम 1955 की धारा 14A में यह प्रावधान है कि सरकार देश में रहने वाले सभी नागरिकों के नाम नेशनल रजिस्टर ऑफ़ सिटीजन्स (एनआरसी) नामक सूची में दर्ज कर सकती है। सबसे पहली बार एनआरसी कि प्रकिया असम में अनौपचारिक तौर पर 1951 में की गयी थी, लेकिन बाद में उसपर कोई काम नहीं हुआ। 2014 में उच्चतम न्यायालय ने असम समझौता की शर्त को पूरा करने के लिए और अवैध प्रवासियों को निकालने के लिए और असम में एनआरसी कराने के निर्देश दिए थे। पिछले लोकसभा चुनाव के दौरान भारतीय जनता पार्टी ने अपने घोषणापत्र में पूरे देश के पैमान पर एनआरसी कराने की बात की थी। 19 नवम्बर 2019 को गृहमंत्री अमित शाह ने राज्यसभा में यह बयान दिया था कि एनआरसी की प्रक्रिया को पूरे देश के पैमाने पर सम्पन्न किया जायेगा। सरकार अभी तक इसका जवाब नहीं दे पायी है कि जब देश में आधार कार्ड, मतदाता पहचान पत्र, पैन कार्ड, राशन कार्ड और पासपोर्ट आदि पहले से ही हैं तो अलग से नागरिकों का रजिस्टर तैयार करने की बेहद ख़र्चीली प्रक्रिया से हासिल क्या होगा? असलियत तो यह है कि सरकार सीएए और एनआरसी के ज़रिये मुस्लिम आबादी को निशाना बनाना चाहती है। इसके अलावा देशव्यापी एनआरसी के बाद ग़रीबों की बड़ी आबादी को नागरिकता से वंचित करने का लाभ पूँजीपतियों को बेहद सस्ती श्रमशक्ति के रूप में भी मिलेगा।

3) असम समझौता क्या था?

वर्ष 1979-85 के बीच अवैध आप्रवासियों के विरोध को लेकर असम में एक व्यापक आन्दोलन हुआ था जिसके पश्चात केंद्र सरकार, राज्य सरकार, आल असम स्टूडेंट यूनियन और असम गण संग्राम परिषद के बीच 15 अगस्त 1985 को एक समझौता हुआ था जिसे असम समझौता कहा जाता है। इस समझौते के तहत 24 मार्च 1971 के पहले आये हुए आप्रवासियों को नागरिकता का प्रावधान किया गया और उसके बाद आने वाले आप्रवासियों को अवैध माना गया और कहा गया कि अवैध प्रवासियों को वापस बांग्लादेश निर्वासित करने की व्यवस्था भी की जाएगी। नागरिकता क़ानून की धारा 6A में असम समझौता का ज़िक्र मिलता है।

4) असम में एनआरसी के प्रयोग के दौरान क्या हुआ?

उच्चतम न्यायालय के निर्देश और निगरानी में 2013 से असम में एनआरसी की प्रक्रिया शुरू हुई। एनआरसी में नाम दर्ज कराने के लिए लोगों को दस्तावेज़ों द्वारा यह सिद्ध करना था कि वे या उनके पूर्वज 24 मार्च 1971 के पहले से असम में रहते आये हैं। लोगों को दस्तावेज़ो की तलाश में दर-दर भटकना पड़ा और रिश्वत भी देनी पड़ी। इसके बावजूद पहली सूची से 40 लाख लोगों के नाम ग़ायब रहे। पहली सूची को संशोधित कर जब अन्तिम सूची तैयार की गयी तो भी 19 लाख लोगों के नाम ग़ायब रहे। इसमें पूर्व राष्ट्रपति से लेकर कारगिल युद्ध में लड़े सैनिक के परिवार तक का नाम शामिल नहीं हुआ। इन 19 लाख तथाकथित अवैध आप्रवासियों में 12 लाख से भी ज़्यादा हिन्दू निकले, 4 लाख मुस्लिम निकले और लगभग 3 लाख अन्य धर्मों के निकले। भाजपा और संघ परिवार अपने प्रचार में बांग्लादेशी अवैध आप्रवासियों को अक्सर मुस्लिम घुसपैठिये कहती रही जिससे लोगों के बीच यह बात प्रचलित हुई कि सभी घुसपैठिये बांग्लादेशी मुसलमान ही हैं, परन्तु एनआरसी के आँकड़ों ने इसके विपरीत सिद्ध किया की बांग्लादेश से हुए अप्रवासन में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही धर्मों के बांग्ला भाषी लोग सीमा पार कर आये हैं और उनमें भी हिन्दुओं की संख्या ज़्यादा है। असम में एन आरसी की इस पूरी प्रकिया में 1,600 करोड़ रूपये खर्च हुए।

5) एनआरसी और सीएए को जोड़कर क्यों देखा जा रहा है?

असम की एनआरसी में जब ये पता चला कि जिन 19 लाख लोगों के नाम एनआरसी में नहीं आ पाये हैं उनमें अधिकांश मुस्लिम नहीं बल्कि हिन्दू हैं तो भाजपा ने अपने हिन्दू वोट बैंक को सुदृढ़ करने के लिए नागरिकता संशोधन क़ानून का सहारा लिया। सीएए और एनआरसी के ख़िलाफ़ देशव्यापी जनान्दोलन से डरकर भले ही नरेन्द्र मोदी इन दोनों के बीच सम्बन्ध की बात से पलटी मार गए लेकिन सच्चाई तो यह है कि गृहमंत्री अमित शाह स्वयं संसद सहित कई मंचों पर इन दोनों प्रक्रियाओं को एक कड़ी का हिस्सा बता चुके हैं।

6) एनपीआर क्या है और एनआरसी से उसका क्या सम्बन्ध है ?

एनपीआर देश में रहने वाले निवासियों की सूची है जिसमें उनका जनसांख्यिकी विवरण शामिल किया जायेगा। आधार कार्ड, पैन कार्ड, पासपोर्ट, वोटर आईडी इत्यादि सभी विवरण भी इसका हिस्सा होंगे। हालाँकि सरकार एनपीआर को जनगणना के साथ जोड़कर प्रचारित कर रही है, लेकिन इसका असली मक़सद एनआरसी की पूर्वपीठिका तैयार करना है। एनपीआर की सूची से ऐसे संदिग्ध लोगों की बनाई जा सकती है जिन्हें अपनी नागरिकता साबित करने के लिए और एनआरसी में अपना नाम दर्ज कराने के लिए कुछ क़ाग़ज़ात प्रमाण के रूप मे दिखाने को बोला जा सकता है। इन क़ागज़ात के अभाव में किसी की नागरिकता तक छीनी जा सकती है।

7) डिटेंशन सेण्टर क्या है?

जिन लोगों के पास नागरिकता साबित करने के लिए आवश्यक क़ाग़ज़ात नहीं होते हैं उन्हें अवैध आप्रवासी घोषित करके उनके देश वापस भेजे जाने से पहले जिस जगह रखा जाता है उसे डिटेंशन सेण्टर कहते हैं। इन सेण्टरों के हालात अमानवीय होते हैं। भारत में असम में कई डिटेंशन सेण्टर पहले से ही हैं। पहले डिटेंशन सेण्टर 2012 में असम के गोलपारा, कोकाराझार और सिलचर की ज़िला जेलों में बनाये गये थे। बाद में तेज़पुर, डिब्रूगढ़ और जोरहाट में भी डिटेंशन सेण्टर बनाये गये। गोलपारा में एक नया विशाल डिटेंशन सेण्टर बनाया जा रहा है। इसके अलावा कर्नाटक व महाराष्ट्र आदि में भी कई नये डिटेंशन सेण्टर बनाये जा रहे हैं

– पराग

सीएए (नागरिकता संशोधन क़ानून) पर केन्द्र सरकार द्वारा जारी प्रश्नोत्तरी का नुक़्तेवार खण्डन

भारत सरकार की प्रश्नोत्तरी जितना बताती है उससे अधिक छिपाती क्यों है?

– एडवोकेट मिहिर देसाई

सीएए/एनआरसी पर केन्द्र सरकार द्वारा जारी प्रश्नोत्तरी (FAQ) पूरी तरह गुमराह करनेवाली है और कई बार तो यह बिल्कुल झूठी जानकारी देती है। यह जितना बताती है उससे कहीं अधिक छिपाती है। सरकार ने हर सवाल का जो जवाब जारी किये हैं, उनमें से हर जवाब के अन्त में मेरी टिप्पणियाँ भी हैं।

अक्सर पूछे जाने वाले सबसे अहम सवालों को सरकारी प्रश्नोत्तरी में उठाया तक नहीं गया है:

इस सूची में केवल तीन देशों - पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और बांग्लादेश - के प्रताड़ित धार्मिक समूहों को ही क्यों शामिल किया गया है। अन्य पड़ोसी देशों, जैसे श्रीलंका (सभी धर्मों के तमिल), म्यांमार (रोहिंग्या), और चीन (ख़ासकर बौद्धधर्म को माननेवाले तिब्बती और उइगर) के धार्मिक अल्पसंख्यकों को क्यों शामिल नहीं किया गया है। इसका कारण विभाजन को नहीं बताया जा सकता क्योंकि अफ़ग़ानिस्तान का विभाजन से कुछ भी लेना-देना नहीं था। हालाँकि सीएए में जिन समुदायों का ज़िक्र किया गया है, उनकी प्रताड़ना से इन्कार नहीं किया जा सकता, लेकिन यह समझना ज़रूरी है कि क्यों केवल कुछ ख़ास देशों के ख़ास समुदाय ही इसमें शामिल किये गये हैं।

जब अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश के प्रताड़ित धार्मिक अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देने की कोशिश की ही जा रही है तो फिर उन्हीं देशों के बलूच, अहमदिया और शिया जैसे अन्य प्रताड़ित धार्मिक अल्पसंख्यकों को वैसी ही सुरक्षा क्यों नहीं मुहैया करायी जा रही है। उनकी प्रताड़ना के भी पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं। केवल एक उदाहरण दें तो पाकिस्तान में अहमदिया समुदाय को 1974 में ग़ैर-मुस्लिम अल्पसंख्यक घोषित कर दिया गया था और अहमदिया लोग हालाँकि ख़ुद को मुस्लिम ही मानते थे, इसके बावजूद 1984 में क़ानून पारित कर उनके लिए ख़ुद को मुस्लिम कहना, इस्लाम को अपना धर्म बताना, या सार्वजनिक तौर पर इस्लाम धर्म का पालन करना दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया। पाकिस्तान में अहमदिया लोगों पर लगातार हमले होते रहे हैं और उनकी हत्या की जाती रही है। ज़ाहिरा तौर पर वे एक प्रताड़ित समूह ही हैं।

... कुछ लोगों को उनके धर्म के आधार पर नागरिकता क्यों प्रदान की जा रही है। यह खुले तौर पर धर्मनिरपेक्षता के ख़िलाफ़ है, जो न सिर्फ़ संविधान की प्रस्तावना का हिस्सा है बल्कि जिसे सर्वोच्च अदालत द्वारा संविधान की मूल सरंचना का अंग माना गया है। भारत का संविधान वह पहला दस्तावेज़ है जो नागरिकता निर्धारित करता है और देता है। ज़ाहिर है यह विभाजन और उससे मिले सारे जख़्मों के फ़ौरन बाद ही अमल में आया। इसके बावजूद, इसने पाकिस्तान (पूर्व और पश्चिम दोनों) के प्रवासियों को नागरिकता हासिल करने की इजाज़त दी और कभी धर्म के आधार पर उनके बीच भेदभाव नहीं किया। अगर पड़ोसी देशों के प्रताड़ित व्यक्तियों को सुरक्षा देनी ही थी तो यह सुरक्षा सभी प्रताड़ित व्यक्तियों को मिलनी चाहिए थी।

एनआरसी में वित्तीय ख़र्च और मानवीय नुक़सान कितना होगा और क्या भारत इसे वहन करने की स्थिति में है? असम में नागरिकता से जुड़े मामलों के सम्बन्ध में लगभग 100 लोग अपनी जान गँवा चुके हैं। जहाँ कुछ लोगों ने राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) के चलते हताशा, चिन्ता और लाचारी में आत्महत्या कर ली है, वहीं कुछ ने डिटेंशन शिविरों में क़ैद किये जाने के डर से जान दे दी है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी डिटेंशन शिविरों में रहस्यमयी परिस्थितियों में मौत हुई है। असम एनआरसी की लागत 1,600 करोड़ रुपये थी और 3.3 करोड़ लोगों का नाम दर्ज करने के लिए 50,000 कर्मचारी तैनात किये गये थे। अब हम इस बात को जानते हैं कि रजिस्टर जब पूरा हुआ तो 19 लाख लोग, जिनमें सभी धर्मों से जुड़े ज़्यादातर लोग वास्तव में नागरिक थे, उस रजिस्टर से बाहर हो गये थे। यदि हम केवल 87.9 करोड़ भारतीय मतदाताओं की गिनती करें और इसे मोटे तौर पर हुई गणना मानें तो पूरे भारत के लिए एनआरसी का ख़र्च 4.26 लाख करोड़ रुपये आयेगा और इसे अंजाम देने के लिए 1.33 करोड़ कर्मचारियों की ज़रूरत पड़ेगी। इसके साथ ही डिटेंशन शिविरों का निर्माण करने की ज़रूरत पड़ेगी। यह ख़र्च आम लोगों पर पड़ने वाले भारी भरकम ख़र्च के अलावा है।

क्या एनआरसी की कोई ज़रूरत है भी?

एनआरसी देश के नागरिकों का एक रजिस्टर है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 326 और जन प्रतिनिधित्व क़ानून, 1950 के तहत केवल नागरिकों को ही मताधिकार प्राप्त है। इसलिए वे सभी लोग जो मतदाता सूची में हैं,

(पेज 10 पर जारी)

2019 की कुछ यादगार तस्वीरें, नारे और कार्टून

कार्टूनिस्ट
ऊपर बायें : सतीश आचार्य
ऊपर दायें : तन्मय त्यागी
दायें : राजेन्द्र धोड़पकर
नीचे : राजेन्द्र धोड़पकर

तस्वीर
नीचे बायें : चीले में चल रहे सरकार-विरोधी प्रदर्शनों के दौरान एक हथियारबन्द पुलिसवाले के सामने डटकर खड़ी लड़की
नीचे दायें : इण्टरनेट पर प्रचलित एक पोस्टर

2019 की कुछ यादगार तस्वीरें, नारे और कार्टून

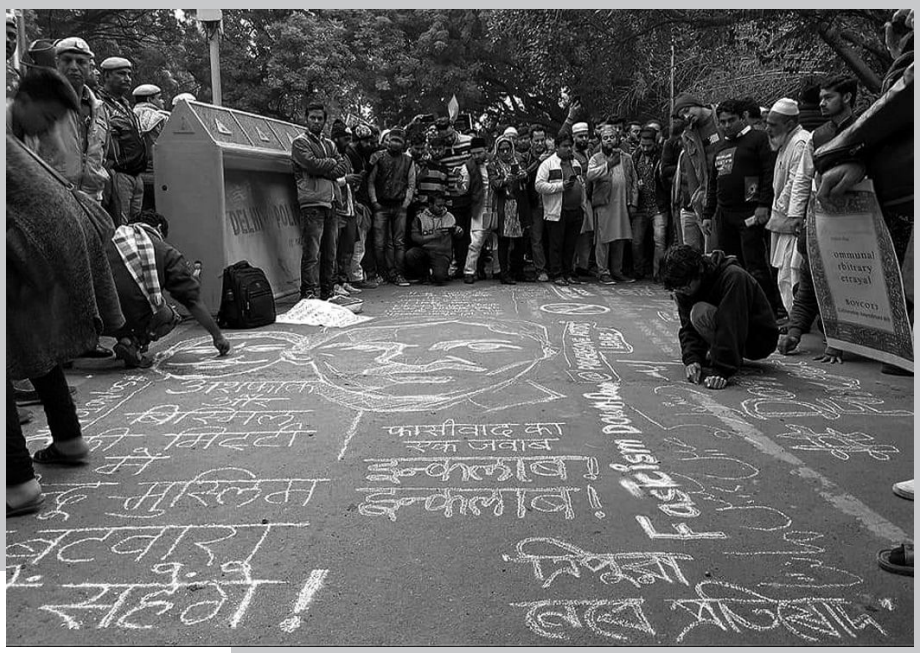

तस्वीर

ऊपर बायें : दिल्ली में अपने साथी को हमलावर पुलिस से बचाने के लिए डटकर खड़ी महिला

ऊपर दायें : नागरिकता क़ानून के विरुद्ध मुम्बई के प्रदर्शन के दौरान एक पोस्टर

दायें : दिल्ली में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट लीग के कलाकार प्रदर्शन के दौरान सड़कों पर नारे लिखते हुए

कार्टून

बायें और नीचे बायें : राजेन्द्र धोड़पकर

नीचे दायें : मंसूर नक़वी

सीएए (नागरिकता संशोधन क़ानून) पर केन्द्र सरकार द्वारा जारी प्रश्नोत्तरी का नुक़्तेवार खण्डन

(पेज 7 से आगे)

उन्हें ज़ाहिर है कि नागरिक माना गया है। पूरे भारत के मतदाता सूचीपत्रों को इकट्ठा करने पर आपको स्वत: ही 18 वर्ष के ऊपर के सभी लोगों का सम्पूर्ण नागरिकता रजिस्टर मिल जायेगा। तो फिर ये सारी चीज़े क्यों दोहरायी जायें? 18 से कम उम्र के लोग इतने बड़े नहीं होते हैं कि वे अपने दम पर किसी दूसरे देश से भारत में आ सकें। इसलिए, उनके माता-पिता यदि मतदाता सूची में शामिल हैं तो बच्चे स्वत: ही (कुछ अपवादों को छोड़कर) नागरिक बन जायेंगे। तब हर एक के लिए अपने नागरिक होने का फिर से सबूत देना आवश्यक बना देने का (असली) मक़सद क्या हो सकता है। इसके पीछे तो यही मंशा काम कर सकती है कि सभी समुदायों (ख़ासकर दलितों, आदिवासियों, स्त्रियों और ट्रांसजेण्डर लोगों) के ग़रीबों की एक भारी आबादी और मुसलमानों के एक बड़े हिस्से को नागरिकता के अधिकार से वंचित कर दिया जाये। एनआरसी के बिना भी विदेशियों सम्बन्धी अधिनियम, 1946 के तहत सरकार को अवैध आप्रवासियों को बाहर निकालने का अधिकार प्राप्त है। दशकों से उन लोगों को ''हटाने'' के लिए, जिन्हें विदशियों के रूप में देखा जाता है, नियमित मुक़दमे चलाये जाते हैं। एनआरसी की यह पूरी क़वायद और कुछ नहीं बस ख़ौफ़ पैदा करना और ऐसे लोगों का एक विशाल समूह बनाना है, जो मतदाता नहीं होंगे, जिनके लिए कल्याणकारी योजनाएँ नहीं होंगी और जिन्हें अलग-अलग ''डिटेंशन शिविरों'' में सम्भवत: दास श्रम के रूप में इस्तेमाल किया जायेगा, यहाँ तक कि अगर वे आज़ाद भी हो जायें तो बिना किसी अधिकार के एक ऐसी आबादी में शामिल होंगे जो मज़दूर के रूप में बेहद सस्ते दरों पर उद्योगपतियों और उनके दलालों को उपलब्ध होते रहेंगे।

आइए अब हम सरकार की प्रश्नोत्तरी को देखें।

प्रश्न. क्या एनआरसी सीएए का ही एक अंग है?

सरकारी उत्तर : *नहीं, सीएए एक अलग क़ानून है और एनआरसी एक अलग प्रक्रिया है। सीएए संसद में पारित होने के बाद पूरे देश में लागू हुआ है, जबकि देश के पैमाने पर एनआरसी के नियम और प्रक्रियाएँ अभी तय नहीं हुई हैं। असम में चलनेवाली एनआरसी प्रक्रिया को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कार्यान्वित और असम समझौते द्वारा अधिकृत किया गया है।*

हमारी बात : यह केवल आंशिक सच्चाई है। नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2019 (सीएए) नागरिकता अधिनियम में किया गया संशोधन है। एनआरसी प्रक्रिया 'नागरिकों की नागरिकता पंजीकरण और राष्ट्रीय पहचान पत्र जारी करने सम्बन्धी नियम, 2003' के अधीन आती है। एनआरसी नियम पहले ही 2003 में अधिसूचित किये जा चुके हैं। ये नियम नागरिकता अधिनियम के तहत हैं। सीएए और एनआरसी दोनों के अन्तर्गत आवश्यक दस्तावेज़ों की प्रकृति अभी अधिसूचित की जानी है। सीएए के अन्तर्गत हिन्दू, ईसाई, बौद्ध, पारसी, जैन और सिख समुदाय से आनेवाले व्यक्ति के लिए यह दिखाना अनिवार्य है कि उसने 31.12.2014 के पहले पाकिस्तान, बांग्लादेश या अफ़ग़ानिस्तान से भारत में प्रवेश किया है। हालाँकि यह निर्धारित नहीं किया गया है कि इसे साबित करने के लिए क्या सबूत आवश्यक हैं। इसी प्रकार एनआरसी के तहत नागरिकता साबित करने के लिए आवश्यक दस्तावेज़ किस तरह के होंगे यह भी अभी दिया नहीं गया है। एनआरसी के बिना भी सीएए बना रह सकता है, इस अर्थ में कि जो प्रवासी सीएए के तहत सुरक्षित हैं वे किसी एनआरसी प्रक्रिया के अधीन आये बिना नागरिकता की माँग कर सकते हैं, परन्तु अब सीएए के बिना एनआरसी नहीं हो सकता। ऐसा इसलिए, क्योंकि सीएए क़ानून बन चुका है (जबतक कि उच्चतम अदालत उसे रद्द नहीं कर देता) और एनआरसी के तहत नागरिकता निर्धारित करते समय यह तय करने के लिए कि कोई व्यक्ति नागरिक है या नहीं, सीएए को ध्यान में रखना होगा।

प्रश्न. क्या भारतीय मुसलमानों को सीएए और एनआरसी से चिन्तित होने की ज़रूरत है?

सरकारी उत्तर : *सीएए या एनआरसी से किसी भी धर्म के भारतीय नागरिक को चिन्तित होने की कोई ज़रूरत नहीं है।*

हमारी बात : यह पूरी तरह से भ्रामक है। एनआरसी की प्रक्रिया ही यह तय करेगी कि आप भारतीय नागरिक हैं या नहीं। इसलिए यदि आपको यह लगता भी है कि आप एक भारतीय नागरिक हैं, जिसके पास अपना पासपोर्ट, मतदाता कार्ड, राशन कार्ड, आधार कार्ड, पैन कार्ड आदि है तो भी एनआरसी की प्रक्रिया में आप बाहर किये जा सकते हैं। यह सभी धर्मों के लिए सच होगा। यही असम में हुआ जहाँ ऐसे तमाम लोगों को नाम नागरिकता रजिस्टर में नहीं आया जिन्हें लगता था कि वे नागरिक हैं क्योंकि उनके पास उपरोक्त सभी कार्ड थे, क्योंकि नागरिकता देने के नये मापदण्डों पर वे खरे नहीं उतरे। जब आपको नागरिक घोषित कर दिया जायेगा तब आपको चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन यह किसी को भी पता नहीं है कि एनआरसी के अन्तर्गत उसे नागरिक घोषित किया भी जायेगा अथवा नहीं। असम एनआरसी में तमाम लोग विभिन्न दस्तावेज़ों में दर्ज नामों की वर्तनी में (चाहे वह ख़ुद का नाम हो या अपने माता-पिता का) एक साधारण सा फ़र्क़ आने पर ही राज्यविहीन होकर रह गये हैं।

प्रश्न. क्या लोगों को धार्मिक आधार पर एनआरसी से बाहर किया जायेगा?

सरकारी उत्तर : *नहीं, एनआरसी किसी भी धर्म के बारे में बिल्कुल नहीं है। एनआरसी को जब भी लागू किया जायेगा तब इसे न तो धर्म के आधार पर लागू किया जायेगा और न ही इसे धर्म के आधार पर कार्यान्वित किया जा सकता है। किसी को भी केवल इस आधार पर बाहर नहीं किया जा सकता कि वह किसी विशेष धर्म का पालन करता है/करती है।*

हमारी बात : यह सच नहीं है। एक उदाहरण लेते हैं। मैं एक ग़रीब मुसलमान हूँ। मैं भारत से हूँ। मेरे बाप-दादे भारत से हैं। लेकिन मेरे पास जन्म का कोई प्रमाण नहीं है। मुझे एनआरसी में शामिल नहीं किया जायेगा और मेरे साथ अवैध प्रवासी की तरह व्यवहार किया जायेगा, इसके बाद सीएए मुझे छाँटकर बाहर कर देगा।

मैं एक ग़रीब हिन्दू हूँ। मैं भारत से हूँ। मेरे बाप-दादे भारत से हैं। मेरे पास जन्म का कोई प्रमाण नहीं है। सीएए के तहत मैं दावा करता हूँ कि मैं पाकिस्तान से आया हूँ। प्रताड़ना के कारण मेरे सारे दस्तावेज़ पाकिस्तान में खो गये थे। मुझे भारतीय नागरिकता दे दी जायेगी।

या दूसरा उदाहरण लें। मैं एक अहमदिया मुसलमान हूँ, जो प्रताड़ना के कारण पाकिस्तान से आया। लेकिन सीएए के तहत मुझे ग़ैरक़ानूनी आप्रवासी माना जायेगा और डिटेंशन शिविर में भेज दिया जायेगा।

मैं एक हिन्दू हूँ। मैं प्रताड़ना के कारण पाकिस्तान से आया हूँ। मुझे नागरिकता दे दी जायेगी।

प्रश्न. क्या मुझे अपनी भारतीय नागरिकता प्रमाणित करने के लिए माता-पिता के जन्म आदि का विवरण देना होगा?

सरकारी उत्तर : *आपको बस अपने जन्म का विवरण जैसे कि जन्म की तारीख़, माह, वर्ष और जन्म का स्थान देना होगा। यदि आपके पास अपने जन्म का विवरण नहीं है तो आपको अपने माता-पिता के जन्म के वही विवरण देने होंगे। लेकिन माता-पिता का या उनके द्वारा कोई भी दस्तावेज़ प्रस्तुत करने की कोई बाध्यता नहीं है। जन्म तिथि और जन्म स्थान से सम्बन्धित कोई भी दस्तावेज़ जमा करके नागरिकता साबित की जा सकती है। हालाँकि इस पर अभी फ़ैसला होना बाक़ी है कि ऐसे कौन से दस्तावेज़ स्वीकार्य होंगे। इनमें मतदाता कार्ड, पासपोर्ट, आधार कार्ड, लाईसेंस के काग़ज़, इंश्योरेंस के काग़ज़ात, जन्म प्रमाणपत्र, स्कूल छोड़ने का प्रमाणपत्र, ज़मीन या मकान से सम्बन्धित दस्तावेज़ या इसी तरह के अन्य दस्तावेज़ों को, जो सरकारी अधिकारियों द्वारा जारी किये गये हैं, शामिल किया जा सकता है। इस सूची में और अधिक दस्तावेज़ों के शामिल किये जाने की सम्भावना है ताकि किसी भी भारतीय नागरिक को अनावश्यक परेशानी न उठानी पड़े।*

हमारी बात : पूरी तरह ग़लत : नागरिकता अधिनियम 1955 में हुए संशोधन के अनुसार जन्म द्वारा नागरिकता इस बात पर निर्भर करती है कि आप पैदा कब हुए थे। यदि आपका जन्म 1 जुलाई 1987 से पहले हुआ

(पेज 11 पर जारी)

एनआरसी का आर्थिक पहलू

– सुरेश चौहान

सीएए क़ानून बनने के पहले और बाद तक गृह मंत्री अमित शाह बार-बार कहते रहे हैं कि इसके बाद राष्ट्रीय स्तर पर एनआरसी ज़रूर आयेगा। तभी से इसको लेकर विभिन्न पहलुओं पर चर्चा और प्रदर्शन होते रहे हैं। जिस एक राज्य असम में इसको लागू किया गया है, वहाँ इसे लागू करने की जिन मुख्य लोगों ने माँग की थी, वे ही अब इसे एक व्यर्थ और जोश में होश खोने वाली क़वायद बता रहे हैं। इसके दूसरे विनाशकारी पहलुओं पर तो अलग से चर्चा हो ही रही है, आइए एक बार इसके आर्थिक पहलू पर भी एक नज़र डालते हैं।

अब तक केवल असम में इस प्रक्रिया का पहला चक्र पूरा हुआ है। असम जहाँ की आबादी लगभग 3.5 करोड़ है और पूरे भारत का लगभग 2.2 क्षेत्रफल घेरता है, वहाँ इस प्रक्रिया के पूरे होने में 10 साल लगे, जिसमें 5200 सरकारी कर्मचारियों को केवल इसी काम में लगे रहना पड़ा। पूरा ख़र्च 1600 करोड़ आया। यह केवल सरकारी ख़र्च था। माना जा रहा है कि आम लोगों को अपनी जेब से करीब 8000 करोड़ रुपये ख़र्च करने पड़े। तब भी दो करोड़ विदेशी घुसपैठियों के हौवे के बजाय केवल 19 लाख 6 हज़ार 657 लोगों का नाम ही सूची से बाहर रहा। अभी इसको दूसरी बार करने की भी योजना है क्योंकि पूर्व सेनाकर्मी से लेकर पूर्व राष्ट्रपति के परिजनों के नाम भी सूची में नहीं आ पाये थे। दूसरे, भाजपा द्वारा मुस्लिम घुसपैठियों का हो-हल्ला मचाने के बावजूद एनआरसी से बाहर रह गये 19 लाख में से 13 लाख से ज़्यादा हिन्दू हैं। इसलिए भी भाजपा सरकार दोबारा जाँच करने के लिए कह रही है।

अब चलिए इसी को पूरे देश पर लागू करते हैं। ऊपर दिये डाटा से हिसाब लगाने पर प्रति व्यक्ति सरकारी ख़र्च लगभग 450 रुपये बैठता है। इसको देश की 130 करोड़ आबादी से गुणा करने पर लगभग 60 हज़ार करोड़ रुपये का ख़र्च बैठता है। और इस प्रक्रिया में कितना समय लगेगा और सरकारी कामकाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। फिर जनता का जो समय व पैसा काग़ज़ात ढूँढ़ने-बनवाने में लगेगा और सरकारी दफ़्तरों में जो भ्रष्टाचार होगा वह अलग।

दिल्ली में 22 दिसम्बर के अपने भाषण में प्रधानमंत्री मोदी ने हमेशा की तरह झूठ बोलने की महारत का प्रदर्शन करते हुए कहा कि भारत में डिटेंशन सेण्टर है ही नहीं। असलियत यह है कि असम में अब तक का सबसे बड़ा डिटेंशन सेण्टर गोलपाड़ा में बनकर तैयार हो गया है, और इकोनॉमिक टाइम्स की एक रिपोर्ट के अनुसार केन्द्र सरकार ने सभी राज्यों को ऐसे डिटेंशन सेण्टर बनाने के आदेश दिये हैं। असम में जो डिटेंशन सेण्टर बनकर तैयार हुआ है उसकी क्षमता 3000 लोगों की है। केवल असम में ही अभी दस और डिटेंशन सेण्टर बनाने का आदेश है। एक सेण्टर को बनाने में 45 करोड़ का ख़र्च आया है। सरल गणित लगाने पर समझ आ जाता है कि अगर मात्र 30,000 हज़ार लोगों के लिए भी डिटेंशन सेण्टर बनाने होंगे तो उसमें 450 करोड़ का ख़र्च आयेगा। देश के स्तर पर यह ख़र्च अरबों में होगा। फिर इसे नियमित रूप से चलाने में जो अतिरिक्त ख़र्च आयेगा उसका अभी हिसाब ही नहीं है। और इस पूरी प्रक्रिया में लोगों को जिस मानसिक प्रताड़ना से गुज़रना पड़ेगा उसका गणित से हिसाब भी नहीं किया जा सकता।

ग़ौरतलब है कि यह सब उस समय हो रहा है जब पूँजीवादी व्यवस्था का ढाँचागत संकट अपने चरम पर है और उसी की राजनीतिक अभिव्यक्ति फ़ासीवाद के रूप में सामने आ रही है। असम में एनआरसी की प्रक्रिया से सम्बन्धित डिजिटल और ऑनलाइन काम का कॉन्ट्रैक्ट अज़ीम प्रेमजी के कॉर्पोरेशन 'विप्रो' को मिला था जिसमें उसे करोड़ों की कमाई हुई थी। इसके अलावा, डिटेंशन सेण्टरों को बनाने और बन जाने के बाद सुचारू रूप से चलाने का ठेका भी किसी ऐसी प्राइवेट कम्पनी को मिलेगा, जैसे हिटलर के समय में यातना शिविरों का ठेका आईबीएम जैसी कम्पनी को मिला था।

जो लोग इन सेण्टरों में रखे जायेंगे उनसे सस्ते में काम भी कराया जा सकेगा क्योंकि उनके पास कोई सामाजिक-राजनीतिक अधिकार नहीं होंगे। इस तरह यदि देशभर में ऐसी सस्ती श्रम-शक्ति की उपलब्धता होगी तो यह न केवल डिटेंशन सेण्टरों में रह रहे लोगों के लिए नारकीय होगा बल्कि आम मज़दूर आबादी के लिए भी ख़तरनाक सिद्ध होगा। कारण यह कि इसके चलते आम मज़दूर का वेतन भी नीचे जायेगा क्योंकि उससे सस्ते में श्रम-शक्ति उपलब्ध होगी। इसीलिए एनआरसी का असर केवल मुसलमानों या जो लोग डिटेंशन सेण्टर भेजे जायेंगे उन पर ही नहीं, पूरी मेहनतकश-मज़दूर आबादी पर ही भयंकर होगा। दूसरी ओर, पूँजीपति इससे भी मुनाफ़ा पीटेंगे।

इस सीधे आर्थिक हिसाब-किताब से ही पता चलता है कि एनआरसी – इसके सामाजिक-राजनीतिक पहलुओं के अलावा भी – देश की आम जनता पर एक भयंकर आर्थिक बोझ डालेगा। वह भी ऐसे समय में, जब अर्थव्यवस्था की हालत ख़स्ता है, रोज़गार नहीं है, शिक्षा-स्वास्थ्य-सार्वजनिक सुविधाओं को लगातार पूँजीपतियों के मुनाफ़े के लिए बेचा जा रहा है, और जनता बिल्कुल त्रस्त है। लोग इन मुद्दों पर सरकार से सवाल न करें, और बस हिन्दू-मुस्लिम में उलझे रहें, इसके लिए यह पूरा बवाल खड़ा किया गया है, जिससे आम जनता को हासिल कुछ नहीं होगा लेकिन वह अपनी ही नागरिकता साबित करने के लिए लाइन में ज़रूर लगी होगी।

इधर ग़रीबों-मज़दूरों की थाली से रोटियाँ ग़ायब, उधर मोदी-गोदी मीडिया के नक़्शे से ग़रीबी ही ग़ायब!

– अनुपम

जुलाई 2019 में आयी विश्व खाद्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 19 करोड़ 44 लाख लोग अल्पपोषित हैं, यानी देश के हर छठे व्यक्ति को मनुष्य के लिए ज़रूरी पोषण वाला भोजन नहीं मिलता। इसी तरह वैश्विक भूख सूचकांक 2019 के मुताबिक़ भूख और कुपोषण के मामले में भारत 117 देशों में 102वें स्थान पर है, जबकि श्रीलंका (66), बंगलादेश (88) और पाकिस्तान (94) भी हमसे ऊपर हैं। ख़ुद भारत सरकार के अनेक आँकड़े इन सच्चाइयों की पुष्टि करते हैं। पर यह सबकुछ जानते-समझते हुए हमारी सरकारें क्या कर रही हैं? हमारा यह "सबसे तेज़" मीडिया क्या कर रहा है? वे हज़ारों बच्चे जो सही पोषण के अभाव में रोज़ ही मर जाते हैं, उनके बारे में क्या ये मीडिया कुछ बताता है?

छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखण्ड ही नहीं बल्कि महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात और उत्तर प्रदेश जैसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं वाले राज्यों में गाँवों में ही नहीं, शहरी इलाक़ों में भी लोग दो वक़्त की रोटी के लिए तरस जाते हैं, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी बुनियादी सुविधाओं की तो बात ही दूर है। पिछले दो दशकों में अन्न उत्पादन के दोगुने हो जाने के बावजूद ये हालात हैं। फिर भी सरकारों, राजनीतिक दलों और गोदी मीडिया को यह सब दिखायी नहीं देता।

'लाइवमिंट' वेब पोर्टल ने पिछले 18 दिसम्बर को अपनी एक रिपोर्ट में बुन्देलखण्ड के तीन गाँवों में ग़रीबी और कुपोषण की जो स्थिति बयान की है उसमें देश की एक बड़ी आबादी के जीवन की झलक देखी जा सकती है। इस रिपोर्ट से कुछ दास्तानें हम यहाँ दे रहे हैं।

चित्रकूट ज़िले के दफाई गाँव की सीमा का परिवार चार लोगों का है। पर उसके घर में हालात ऐसे हैं कि वह न तो स्वयं ठीक से खा-पी पाती है और न ही अपने दो साल के बच्चे को खिला पाती है। उसका पति संजय ग्रेजुएट है पर गाँव में और आसपास दिहाड़ी मज़दूरी करता है। हाल के दिनों में उसे काम मिलना मुश्किल हो गया है। कभी-कभी वह दिन में 100 रुपये ही कमा पाता है। कभी वह भी नहीं मिलता। उसके दो साल के बच्चे को खाने के लिए नमक-रोटी से अधिक और कुछ नसीब नहीं। वह कहती है, "मेरी ज़िन्दगी पाँच रुपये के तेल और दो रुपये के मसाले का इन्तज़ाम करने में ही बीत जाती है।" अपने बच्चों को दूध पिला सके, इसके लिए वह ख़ुद अक्सर ही रात में भूखी रह जाती है। 2013 में बड़े तामझाम के साथ पारित हुए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून के तहत हर महीने 5 किलो अनाज सस्ती दर पर देने वाली योजना से भी सीमा का परिवार बाहर है। दफाई में 2016 के बाद से नये लोगों को शामिल करने के लिए कोई सर्वे नहीं हुआ है। नयी विवाहिता स्त्रियाँ और बच्चे इससे बाहर ही रह गये हैं जिससे अनेक परिवार भुखमरी के कगार पर पहुँच गये हैं।

16 साल की रजनी ने बताया कि उसके घर में रसोई गैस सिलेण्डर तो है, पर उसमें गैस नहीं है। उज्ज्वला योजना की यह सच्चाई गाँवों के बहुतेरे परिवारों में दिखाई देती है।

हीरे की खदानों के लिए मशहूर मध्यप्रदेश के पन्ना ज़िले में जामुनहेई गाँव की एक महिला गेंदाबाई के घर जब पत्रकार पहुँचा तो दोपहर के साढ़े तीन बजे वह 9 साल की अपनी बेटी के साथ दिन हल्दी और नमक डालकर पकाया भात खा रही थी। सुबह से उसने और कुछ नहीं खाया था। उसकी झोपड़ी में एक किलो चावल, थोड़ा गेहूँ, एक टमाटर, दो छोटे प्याज, कुछ हरी मिर्च और थोड़े से तेल के अलावा कुछ नहीं था। उसके बच्चों ने कभी दूध का स्वाद ही नहीं लिया था।

आपको ऐसी कई सारी बातें बुन्देलखण्ड में सुनने को मिल जायेंगी। एक अनुमान के अनुसार बुन्देलखण्ड की 70 प्रतिशत आबादी ग़रीबी में जीती है। इन हालात को सुधारने के लिए इन गाँवों में सरकारी नीतियों द्वारा क्या किया गया, इसका भी ज़िक्र रिपोर्ट में है।

दुनिया में बाँध बनाने के मामले में लम्बे-चौड़े रिकॉर्ड बनाने वाले देश में 1 करोड़ 80 लाख की आबादी वाले बुन्देलखण्ड की आम जनता अक्सर ही प्यासी रहती है। यहाँ की नदियाँ गर्मियों में सूखने लगती हैं। नहरों में पानी की कमी हो जाती है। इस थोड़े से पानी को गाँव-गाँव तक पहुँचाया जाये, इसके लिए भी कोई सुचारु व्यवस्था नहीं है। ऐसे में छोटे किसान सिंचाई के लिए मानसून पर निर्भर रहते हैं और बारिश नहीं होने पर उनकी फ़सल ख़राब हो जाती है। गर्मियों में नदियों के सूख जाने पर पानी के टैंक अगर आते हैं तो हफ़्तों और कभी-कभी महीनों बाद। ऐसे में सक्षम लोग तबाह खेती और पानी की कमी के कारण दिल्ली और मुम्बई जैसे महानगरों में काम करने के लिए चले जाते हैं। मगर बूढ़े और बाहर जाने में असमर्थ लोग वहीं दम तोड़ते रहते हैं।

विभिन्न दलों और सरकारों के बड़े-बड़े वादों-नारों के बावजूद बुन्देलखण्ड भूख से होने वाली मौतों का गढ़ बना हुआ है। सही पोषण के अभाव में बच्चों का मरना इन हुक्मरानों के लिए अब कोई नयी बात नहीं रह गयी है। वे इसे किसी आर्थिक आँकड़े की तरह ही गिनते हैं। 11,000 करोड़ की मिड डे मील योजना का 2019 का लेखा-जोखा देते हुए मानव संसाधन मंत्रालय के एक अधिकारी ने बताया कि मिड डे मील खाकर पिछले तीन सालों में 930 बच्चे बीमार हो चुके हैं। इन सभी बच्चों ने कोई लीची नहीं खायी थी बल्कि सरकारी स्कूलों में बाँटा गया वही खाना खाया था जिसके भरोसे कुपोषण से जंग लड़ने की बात अक्सर की जाती है। मीडिया के माध्यम से यह प्रचार किया जाता है कि बच्चों को पोषण वाला खाना मिलता है पर सच तो यह है कि इसी मिड डे मील में कभी छिपकली मिलती है तो कभी मरा हुआ चूहा। इसी वर्ष सितम्बर माह में एक पत्रकार ने मिर्ज़ापुर के एक सरकारी स्कूल में नमक-रोटी परोसने का वीडियो बनाकर इस 'अच्छे खाने' का खुलासा किया कि तो उल्टे उसी पर झूठे आरोप लगाकर गिरफ़्तार कर लिया गया। इसके एक ही महीने बाद सोनभद्र ज़िले में एक लीटर दूध में एक बाल्टी पानी मिलाकर बच्चों को देने का मामला सामने आया। इस पर भी लीपापोती करने की कोशिश की गयी।

बुन्देलखण्ड में ग़रीब भूमिहीन किसानों के बच्चे तो शायद ही कभी स्कूल का मुँह देख पाते हैं। अधिकतर को तो बेहद कम उम्र से ही ज़िन्दगीभर खटने का सबक़ पढ़ा दिया जाता है। खाते-पीते किसान उन्हें अपने यहाँ गेहूँ की फ़सल पकने पर उसकी रखवाली के लिए रख लेता है और पाँच महीने तक 24 घण्टे, सातों दिन की इस रखवाली के बदले उन्हें 200 किलो गेहूँ या लगभग 4000 रुपये मिलते हैं, यानी लगभग 27 रुपये प्रतिदिन।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली आज अपनी आख़िरी साँसें गिन रही है। आधार कार्ड लागू होने के बाद बहुत से लोगों को बिना राशन लिये लौटना पड़ रहा है। मिंट की रिपोर्ट के अनुसार, आम लोगों की उँगलियों की छाप का मुश्किल से ही मिलान हो पाता है क्योंकि कठिन मेहनत के कारण उनकी उँगलियाँ घिसी हुई होती हैं। अगर उनकी तरफ़ से सबकुछ ठीक होता है तो इण्टरनेट की धीमी गति या फिर बिजली चले जाने से उनकी पहचान नहीं हो पाती।

बुन्देलखण्ड के गाँवों में मनरेगा के तहत भी काम मिलना बहुत मुश्किल है। और इसके बाद भी मज़दूरी मिलेगी या नहीं, इसकी कोई गारण्टी नहीं है। कई कार्डधारकों के कार्ड पूरे ही ख़ाली दिखायी दिये हैं। पूरे देश में वित्तीय वर्ष 2019-20 में अप्रैल से दिसम्बर के बीच मनरेगा के तहत मिलने वाले रोज़गार में करीब एक-तिहाई की कमी आयी है।

यह ऐसा दौर है जब देश में पिछले 45 सालों में सबसे अधिक बेरोज़गारी है। रोज़गार में दिन-ब-दिन आती कमी और बढ़ती महँगाई के चलते पूरे देश में ही 2011-12 और 2017-18 के बीच ग्रामीण ग़रीबी में 4 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ है। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय की एक सर्वे रिपोर्ट के अनुसार इसी दौरान ग्रामीण क्षेत्रों के कुल उपभोग में 9 प्रतिशत की कमी आयी जो कि आज़ादी के बाद से पहली बार हुआ है। पर लोगों का ध्यान ग़रीबी, महँगाई और बेरोज़गारी जैसे मुद्दों पर न जाये, इसके लिए जाति-धर्म और नागरिकता के मुद्दे को आगे कर दिया गया है।

सीएए (नागरिकता संशोधन क़ानून) पर केन्द्र सरकार द्वारा जारी प्रश्नोत्तरी का नुक़्तेवार खण्डन

(पेज 10 से आगे)

है, तो यह प्रमाणित करने के लिए काफ़ी है कि आप भारत में पैदा हुए हैं। लेकिन नागरिकता अधिनियम में बाद के संशोधनों के कारण, यदि आप 1 जुलाई, 1987 से 3 दिसम्बर, 2004 के बीच पैदा हुए थे तो आपको न केवल यह प्रमाणित करना होगा कि आप भारत में पैदा हुए थे, बल्कि यह भी साबित करना होगा कि आपके जन्म के समय आपके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक था। यदि आपका जन्म 3 दिसम्बर 2004 के बाद हुआ है तो आपको यह प्रमाणित करना होगा कि आप भारत में पैदा हुए थे तथा आपके जन्म के समय आपके माता-पिता दोनों में से कोई एक भारत का नागरिक था और दूसरा अवैध प्रवासी नहीं था।

जिन दस्तावेज़ों के माँगे जाने की सम्भावना है उसके बारे में भी ग़लतबयानी की जा रही है। सबसे पहले तो यह कि सरकार को जनसंख्या रजिस्टर शुरू करने के पहले दस्तावेज़ों की एक सूची निर्धारित करने से रोका किसने है, ताकि लोगों को यह तो स्पष्ट हो जाये कि उन्हें जमा क्या करना होगा। दूसरे, यह कहना कि नागरिकता प्रमाणित करने के दस्तावेज़ों में से एक आधार कार्ड होगा, पूरी तरह से ग़लत है। आधार अधिनियम की धारा 9 यह कहता है:

आधार संख्या या उसका बाद का सत्यापन आधार संख्या धारक को स्वत: नागरिकता या निवासस्थान का कोई अधिकार नहीं देता या उसका प्रमाण नहीं होता।

प्रश्न. यदि कोई व्यक्ति अनपढ़ है और उसके पास उपयुक्त दस्तावेज़ नहीं है, तो क्या होगा?

सरकारी उत्तर : *ऐसे मामले में अधिकारी उस व्यक्ति को गवाह लाने की अनुमति देंगे। साथ ही, उसे अन्य साक्ष्य और सामुदायिक सत्यापन आदि की भी अनुमति होगी। एक उचित प्रक्रिया का पालन होगा। किसी भी भारतीय नागरिक को अनुचित परेशानी में नहीं डाला जायेगा।*

हमारी बात : यह किस आधार पर कहा जा रहा है? जन्म को प्रमाणित करने के लिए कोई नियम निर्धारित नहीं है। आज क़ानून के तहत जो एकमात्र प्रावधान निर्धारित है वह जन्म और मृत्यु सम्बन्धी अनिवार्य पंजीकरण अधिनियम, 1969 के अन्तर्गत है। इसके अनुसार कम से कम 1969 से प्रत्येक जन्म का पंजीकरण अनिवार्य होगा। लेकिन ग्रामीण क्षेत्र में लोगों की भारी संख्या और शहरी इलाक़ों में कई लोग, जिसमें भारी संख्या में झुग्गी और फुटपाथ पर रहनेवाले लोग, आदि शामिल हैं, जन्म का पंजीकरण नहीं कराते। किसी नियम, विनियमन, अधिसूचना या अन्य सरकारी आदेश के अभाव में यह किस आधार पर कहा जा रहा है कि गवाहों को अनुमति दी जायेगी?

प्रश्न. भारत में बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं जिनके पास घर नहीं हैं, जो ग़रीब हैं और शिक्षित नहीं हैं और उनके पास पहचान का कोई आधार भी नहीं है। ऐसे लोगों का क्या होगा?

सरकारी उत्तर : *यह पूरी तरह सही नहीं है। वे लोग किसी आधार पर मतदान करते हैं और सरकार की कल्याणकारी योजनाओं का वे लाभ भी उठाते हैं। उसी आधार पर उनकी पहचान स्थापित की जायेगी।*

हमारी बात : हमें नहीं पता कि यह किस आधार पर कहा जा रहा है। कल्याणकारी योजनाओं का लाभ उठाने से नागरिकता स्थापित नहीं हो जाती। कोई क़ानून ऐसा नहीं कहता है। इसके साथ ही यहाँ सवाल पहचान स्थापित करने का नहीं बल्कि नागरिकता साबित करने का है। (गृह मंत्री कह चुके हैं कि आधार को नागरिकता का प्रमाण नहीं माना जायेगा।– सं.)

(यह लेख प्रसिद्ध वकील मिहिर देसाई के विस्तृत लेख के एक अंश का हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी में पूरा लेख 'मज़दूर बिगुल' की वेबसाइट mazdoorbigul.net पर पढ़ा जा सकता है।)

अंग्रेज़ी से अनुवाद: मीनाक्षी

रेलवे की बढ़ती बदहाली और निजीकरण के नये हथकण्डे

– रूपा

एक तरफ़ जहाँ मोदी सरकार देश में बुलेट ट्रेन लाने के शिगूफ़ छोड़ रही है, है वहीं दूसरी तरफ़ भारतीय रेल बीते 10 सालों में सबसे बुरे दौर में पहुँच गयी है। इस बात की तस्दीक नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) ने की है। कैग की रिपोर्ट के मुताबिक़, भारतीय रेलवे की कमाई बीते दस सालों में सबसे निचले स्तर पर पहुँच चुकी है। अगर कैग के इस आँकड़े को आसान भाषा में समझें तो रेलवे 98 रुपये 44 पैसे लगाकर सिर्फ़ 100 रुपये की कमाई कर रही है। यानी कि रेलवे को सिर्फ़ एक रुपये 56 पैसे का मुनाफ़ा हो रहा है जो व्यापारिक नज़रिये से अब तक की सबसे बुरी स्थिति है। इसका सीधा अर्थ यह है कि अपने तमाम संसाधनों से रेलवे 2 फ़ीसदी भी नहीं कमा पा रही है।

वित्तीय वर्ष 2014-15 में रेलवे का परिचालन अनुपात 91.25 फ़ीसदी था। पिछले पाँच वर्ष में इसमें लगातार गिरावट आयी है। रेलवे ने एन.टी.पी.सी. और इरकॉन से कुछ परियोजनाओं के लिए एडवांस लिया हुआ है। इस वजह से परिचालन अनुपात 98.44 पर टिका है। अगर ऐसा नहीं होता तो ये स्थिति 102.66 तक पहुँच सकती थी, यानी रेलवे को हर 100 रुपये पर 2 रुपये 66 पैसे का घाटा होता।

बुलेट ट्रेन के ख़्वाब दिखाकर रेलवे को अन्दरख़ाने जर्जर बनाकर बेचने की तिकड़मों की सच्चाई अब खुल्लमखुल्ला ज़ाहिर हो गयी है। भारतीय रेल को बेहतर बनाने के लम्बे-चौड़े वादों की सच्चाई बताने के लिए कैग की रिपोर्ट ही काफ़ी है। इसके अनुसार, रेल का सबसे बड़ा संसाधन माल भाड़ा है। इसके बाद यात्रियों से होने वाली कमाई आती है। मगर अतिरिक्त बजटीय संसाधन और डीजल उपकर की हिस्सेदारी में बढ़ोत्तरी हो गयी जबकि माल भाड़ा, यात्री आय, जीबीएस और अन्य हिस्सेदारी घट गयी। 2016 से 2017 में रेलवे को 4,913 करोड़ की अतिरिक्त आय हुई थी, लेकिन साल 2017-18 में यही अतिरिक्त आय 60 फ़ीसदी घटकर 1,665 करोड़ रुपये रह गयी।

सरकारी तर्क है कि रेलवे द्वारा पिछले 10 सालों में यात्री किराये में कोई उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी नहीं की गयी, जिसकी वजह से रेलवे इस माली हालत में पहुँच गयी है। मगर वास्तविकता ठीक इसके विपरीत है। रेलवे सार्वजनिक क्षेत्र की संस्था है और इसे बनाने का मक़सद मुनाफ़ा कमाना नहीं, बल्कि लोगों को सस्ती और सुलभ यात्रा सेवाएँ प्रदान करना है। सरकार की यह ज़िम्मेदारी है कि वह देश की आबादी को किफ़ायती दरों पर परिवहन व्यवस्था मुहैया कराये, क्योंकि ट्रेन में यात्रा करने वाली आबादी में अधिकांश ग़रीब-मेहनतकश लोग होते हैं, जिनके लिए ज़्यादा किराया देना सम्भव नहीं है।

पिछले कुछ सालों में रेलवे ने टिकट रद्द करने, तत्काल बुकिंग, प्रीमियम किराया आदि से भी हज़ारों करोड़ की कमाई की है। दूसरी ओर आम यात्रियों के लिए सुविधाएँ बढ़ने के बजाय बदतर हो गयी हैं। एसी डिब्बों की संख्या और सुविधाएँ बढ़ी हैं, लेकिन बहुसंख्यक आबादी द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले जरनल और स्लीपर डिब्बों की हालत ख़राब है। प्लेटफ़ार्मों पर खाने-पीने के ठेके बड़ी कम्पनियों को दे देने से ग़रीब यात्रियों के लिए भारी मुश्किल हो गयी है। ट्रेनों की लेटलतीफ़ी, सुरक्षा आदि में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। आम यात्री अब भी भेड़-बकरियों की तरह यात्रा करने को मजबूर हैं।

गुणवत्ता सुधारने के दावों की असलियत यह है कि निजीकरण के घोड़े पर सवार मोदी सरकार ने अब सुरक्षा जैसे अहम काम को भी दाँव पर लगा दिया है। ट्रेनों के सुरक्षित संचालन से जुड़े करीब 1.6 लाख पद पहले से खाली पड़े थे। अब ट्रेनों को समय पर चलाने और रफ़्तार को बढ़ाने का बहाना लेकर मोदी सरकार रख-रखाव के काम को भी आउटसोर्स करने, यानी निजी कम्पनियों को देने, की योजना बना चुकी है। रेलवे में हर ट्रेन के रख-रखाव के निर्धारित समय को छह घण्टे से घटाकर दो घण्टे करने की योजना है। भारतीय रेल इस समय जिन इंजनों, रेल के डिब्बों, सिग्नल व्यवस्था आदि का इस्तेमाल कर रही है, वे पहले ही पुराने पड़ चुके हैं। रेलवे को अपने आधारभूत ढाँचे को और दुरुस्त करने की ज़रूरत है। ऐसे में ट्रेन के रख-रखाव के समय को कम करने और इस बेहद महत्वपूर्ण काम को बाहर की कम्पनियों द्वारा ठेके पर कराना यात्रियों की ज़िन्दगी के साथ खिलवाड़ करना है। साथ ही, इससे रेलवे के करीब डेढ़ लाख कर्मचारियों की नौकरी भी ख़तरे में पड़ जायेगी। लेकिन इससे न तो रेलमंत्री पीयूष गोयल को फ़र्क़ पड़ने वाला है और न ही तमाम नेताओं, मंत्रियों और रईसज़ादों को, क्योंकि उनके लिए हवाई सेवाएँ तैयार हैं। फ़र्क़ तो इस देश के उन करोड़ों आम लोगों पर पड़ेगा, जो रोज़ ट्रेनों में सफ़र करते हैं।

मोदी सरकार रेलवे को बर्बाद करके लोगों के मन में यह बात बैठा देना चाहती है कि कर्मचारी सही से काम नहीं करते जबकि वेतन उन्हें पूरा मिलता है, रेलवे लगातार घाटे में जा रही है, ट्रेनें हमेशा अनियमित रहती हैं, वगैरह-वगैरह। इसलिए सरकार का निजीकरण का फ़ैसला सही है। इसी हथकण्डे का इस्तेमाल दूसरे सार्वजनिक क्षेत्रों को बेचने के लिए किया गया था और अब यही रेलवे के साथ किया जा रहा है।

सरकार और उसके भोंपू पत्रकार लगातार यह माहौल बना रहे हैं कि रेलवे को बदहाली से बचाने का एकमात्र विकल्प निजीकरण हो सकता है। विवेक देबरॉय के नेतृत्व में बनी रेलवे पुनर्गठन कमेटी और नीति आयोग का भी यही कहना है कि रेलवे के नॉन-कोर फ़ंक्शन, यानी अस्पताल, स्कूल, कारख़ाने, वर्कशॉप और रेलवे पुलिस आदि को कम से कम अगले 10 साल के लिए निजी क्षेत्र के हवाले कर देना चाहिए। बुलेट ट्रेन तो नहीं आयी मगर निजीकरण की गाड़ी को सरकार ने बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से दौड़ा दिया है।

लोगों को किसी गफ़लत में रहने की ज़रूरत नहीं है कि निजीकरण से गाय-भैंसों की तरह यात्रा करने को मजबूर करोड़ों आम यात्रियों की सुविधाएँ बढ़ाने, रेल की सुरक्षा व्यवस्था मज़बूत करने या रेलवे में ख़ाली पड़े 2.6 लाख पदों को भरने के बारे में सरकार सोच रही है। सरकार राजधानी और शताब्दी जैसी प्रीमियर गाड़ियों का संचालन भी निजी ऑपरेटरों को सौंप देना चाहती है। निजी क्षेत्र की पहली ट्रेन चलनी शुरू हो चुकी है। 50 रेलवे स्टेशनों और 150 ट्रेनों को निजी हाथों में देने का फ़ैसला किया जा चुका है। पुनर्विकास के नाम पर अन्य 400 स्टेशनों का नामांकन किया जा चुका है।

बहुत सारे विभागों में रेलवे के काम को पहले ही आउटसोर्स कर दिया गया है, जिससे कर्मचारियों के पास कोई काम नहीं बचा है। सरकार चाहती है कि रेलवे का ज़्यादातर काम ठेके पर दे दिया जाये, ताकि कर्मचारियों को न्यूनतम वेतन भी न देना पड़े, और न ही अन्य सुविधाएँ। निजीकरण के साथ ही रेलवे के बचे-खुचे 14 लाख कर्मचारियों का ही नहीं, लगभग इतने ही पेंशनरों का भविष्य भी दाँव पर लग जायेगा। बीएसएनएल और भारतीय टेलीफ़ोन कम्पनी को जिस तरह निगम बनाकर तबाह किया गया, उससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि रेलवे का हश्र आगे क्या होने वाला है।

वैसे रेलवे के निजीकरण की दिशा तो 1995 में आयी पाँचवें वेतन आयोग की रिपोर्ट में ही तय कर दी गयी थी। उस समय भी रेलवे की यूनियनों के नेतागण बिना किसी ना-नुकर के उस पर मुहर लगा आये थे और आज भी जब रेलवे को एक-एक कर किश्तों में बेचा जा रहा है, तब भी यूनियनों के नेता रस्मी क़वायदों और खोखली नारेबाज़ी से आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं।

देश के सबसे बड़े सरकारी व सबसे ज़्यादा रोज़गार पैदा करने वाले संस्थान को बर्बादी के कगार पर ला खड़ा करने और उसे मुनाफ़ाखोरों के हाथों बेचने के ख़िलाफ़ संगठित प्रतिरोध की ज़रूरत है, क्योंकि यह लड़ाई सिर्फ़ रेलकर्मियों की नहीं है, ये लड़ाई सभी मेहनतकशों की लड़ाई है। इस लड़ाई को मोदी सरकार की जनविरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ व्यापक प्रतिरोध से जोड़ने की ज़रूरत है।

“न्यू इण्डिया” में बच्चों का घिनौना कारोबार

– लालचन्द्र

हम बचपन से सुनते आ रहे हैं कि बच्चे देश का भविष्य होते हैं। लेकिन ऐसे जुमलों की असलियत तब सामने आ जाती है जब ग़रीबों के बच्चे गोरखपुर और मुज़फ़्फ़रपुर से लेकर कोटा तक के अस्पतलों में बिना इलाज के दम तोड़ देते हैं। भारत को महाशक्ति बनाने के दावों को मुँह चिढ़ाते हुए करोड़ों बच्चे होटलों में प्लेट धोने से लेकर कारख़ानों में जानलेवा काम तक कर रहे हैं और सड़कों पर भीख माँग रहे हैं। यौन शोषण के शिकार हो रहे हैं। इस नंगी सच्चाई को सभी जानते हैं। पर कभी-कभी ऐसी दिल दहला देने वाली ख़बरें सामने आती हैं जिन्हें पढ़ने के बाद कोई भी संवेदनशील इन्सान यह सोचने लगेगा कि बच्चों की दुश्मन इस व्यवस्था को जल्द से जल्द नष्ट कर देना चाहिए!

पिछली 21 दिसम्बर को बच्चों की तस्करी का एक बड़ा खुलासा 'दैनिक भास्कर' अख़बार ने प्रकाशित किया। अख़बार के अनुसार गुजरात से सटे राजस्थान के तीन ज़िलों, उदयपुर, डूँगरपुर और बाँसवाड़ा के 127 गाँवों में बच्चे बिक रहे हैं – उम्र 5 से 16 साल, कीमत 50 रुपये से 150 रुपये रोज़ाना। जो चाहे काम कराओ, जहाँ चाहे ले जाओ। इसमें बच्चियाँ भी शामिल हैं। कई बच्चे अपाहिज होकर लौटे हैं, तो कई बच्चे कफ़न में घरों को लौटे। रिपोर्टर द्वारा किये गये स्टिंग में दलालों ने बताया कि कुल 300 दलाल बच्चों को गुजरात ले जाते हैं। (जी हाँ, उसी गुजरात में जिसके तथाकथित विकास का शोर मचाकर नरेन्द्र मोदी ने 2014 में लोगों को फुसलाया था) इसके लिए गुजरात की 500 से ज़्यादा जीपें तीनों ज़िलों में दौड़ती हैं। जीप मालिक को प्रति बच्चा 50 रुपये मिलता है, जिसमें से वह 500 रुपये रोज़ाना पुलिस को देता है। तीनों ज़िलों से रोज़ाना 20 हज़ार से ज़्यादा बच्चों और महिलाओं की तस्करी गुजरात के लिए होती है।

इस प्रकरण में पुलिस से लेकर बाल संरक्षण आयोग का चेहरा भी बेनक़ाब हो गया है। पत्रकारों ने जब इन घटनाओं के बारे में बताया और 20 बच्चों को पुलिस को सौंपा तो पुलिस दिनभर बच्चों से सवाल करती रही। दिनभर से भूखे बच्चों को थाने में बिठाये रखा। बाल संरक्षण आयोग को सूचित करने के बावजूद देर रात तक कोई सुध लेने नहीं आया। पुलिस ने एक भी दलाल को गिरफ़्तार नहीं किया। उल्टा पत्रकारों व एक एनजीओ के कार्यकर्ता को धमकाया।

राजस्थान का अलवर ज़िला भी बच्चों की मण्डी जैसा ही है। यहाँ पर छोटी-छोटी बच्चियों को हार्मोन का इंजेक्शन दिया जाता है जिससे वे छोटी उम्र में ही बड़ी दिखने लगती हैं। फिर उन्हें देह व्यापार में धकेल दिया जाता है। यह सब पुलिस की नाक के नीचे और उन्हीं की शह पर होता है।

राजस्थान के अलावा गुजरात, महाराष्ट्र, दिल्ली, बिहार, उत्तर प्रदेश में भी मानव तस्करी धड़ल्ले से जारी है। मानव तस्करी के मामले में भारत दुनिया के चोटी के देशों में शामिल है। किसी एक राज्य की सीमा के अन्दर तथा एक से दूसरे राज्य में मानव तस्करी के अलावा नेपाल व बंगलादेश से अन्तरराष्ट्रीय मानव तस्करी भी भारत में होती है। भारत से खाड़ी के देशों, अमेरिका तथा यूरोपीय देशों में भी मानव तस्करी होती है। दुनियाभर में मानव तस्करी के पीड़ितों में एक-तिहाई बच्चे होते हैं।

आँकड़ों की बात करें तो 2017 में मानव तस्करी में राजस्थान पहले नम्बर पर था। बाल श्रम के मामले में यह तीसरे स्थान पर है। यहाँ सरकारी तौर पर 8.5 लाख बाल श्रमिक हैं। वास्तविक संख्या इससे कहीं ज़्यादा है। मगर राजस्थान ही वह राज्य है जो श्रम क़ानूनों को कमज़ोर करने में सबसे आगे रहा है। अब मालिकों को श्रम विभाग आदि की जाँच का रहा-सहा डर भी दूर हो चुका है। ऊपर से, 2017 के बाद नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) ने आँकड़े प्रकाशित करना ही बन्द कर दिया है क्योंकि मोदी सरकार का मंत्र है कि जो आँकड़े उसके ख़िलाफ़ हैं उन्हें जारी ही मत करो, चाहे वह बेरोज़गारी के हों, आर्थिक विकास के या फिर अपराध के।

एनसीआरबी के पिछले आँकड़ों से पता चलता है कि मानव तस्करी में बच्चों-महिलाओं की तिजारत कितने बड़े पैमाने पर जारी है। वर्ष 2015 में 15,379 पीड़ितों में से 9034 की उम्र 18 वर्ष से कम थी। 2016 में यह संख्या बढ़कर 14,183 हो गयी। 2016 में मानव तस्करी से जुड़े 8137 मामलों में से 7670 से अधिक मामलों में मक़सद यौन शोषण एवं वेश्यावृत्ति था, 162 मामले चाइल्ड पोर्नोग्राफ़ी (बच्चों के अश्लील फ़ोटो और वीडियो बनाने) के थे। ये तो वे आँकड़े हैं जो रिपोर्ट में दर्ज हुए हैं। बहुत बड़ी संख्या ऐसे मामलों की होती है जिनकी रिपोर्ट ही नहीं होती। ग़रीब परिवारों को थानों तक पहुँचने नहीं दिया जाता। पहुँच भी गये तो थानों से रिपोर्ट लिखे बग़ैर भगा दिया जाता है। कुछ वर्ष पहले राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट में यह बात सामने आयी थी कि देश की राजधानी दिल्ली में 7000 बच्चे हर साल ग़ायब हो जाते हैं। हालाँकि विभिन्न संस्थानों का दावा है कि वास्तविक आँकड़े इससे कई गुना ज़्यादा हो सकते हैं, क्योंकि ज़्यादातर लोग अपनी शिकायतें लेकर पुलिस के पास जाते नहीं हैं, या फिर पुलिस बहुत से मामलों में गुमशुदगी की रिपोर्ट ही दर्ज नहीं करती है।

भारत सरकार ने मानव तस्करी को रोकने के लिए जो क़ानून बनाया है, उसमें ज़बरिया श्रम को शामिल नहीं

(पेज 14 पर जारी)

फ़ैक्टरी-मज़दूरों की एकता, वर्ग-चेतना और संघर्ष का विकास*

(रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी के मसौदा कार्यक्रम की व्याख्या का एक अंश)

– व्ला.इ. लेनिन

(लेनिन ने 1895 में सेण्ट पीटर्सबर्ग के सभी मार्क्सवादी मज़दूर मण्डलों को मिलाकर 'मज़दूर मुक्ति संघर्ष लीग' की स्थापना की थी जिसने मज़दूरों के बीच मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार के साथ ही हड़तालों और आन्दोलनों में भी गुप्त रूप से अग्रणी भूमिका निभायी। उस समय तक रूस के कई शहरों में मार्क्सवादी ग्रुप गठित हो चुके थे जिन्हें एकजुट करके लेनिन सर्वहारा वर्ग की एक अखिल रूसी पार्टी बनाना चाहते थे। इसी बीच, दिसम्बर 1895 में ज़ारशाही ने लेनिन को गिरफ़्तार कर लिया। चौदह महीने तक विचाराधीन क़ैदी के रूप में जेल में रखने के बाद उन्हें तीन वर्ष के लिए साइबेरिया निर्वासन का दण्ड सुनाया गया।

जेल और निर्वासन के दौरान लेनिन लगातार सैद्धान्तिक और प्रचारात्मक-आन्दोलनात्मक लेखन करते रहे। जेल में रहते हुए दिसम्बर 1895 से जुलाई 1896 के बीच उन्होंने रूस की सामाजिक-जनवादी पार्टी के कार्यक्रम का एक मसौदा तैयार किया और आम कार्यकर्ताओं तथा मज़दूरों को समझाने के लिए उसकी एक लम्बी व्याख्या भी लिखी। यह सबकुछ उन्होंने दवाइयों की किताब की पंक्तियों के बीच अदृश्य स्याही के रूप में दूध का इस्तेमाल करते हुए लिखा। यह लेनिन का महत्वपूर्ण प्रारम्भिक लेखन है। पार्टी कार्यक्रम के इस प्रस्तावित मसौदे और उसकी व्याख्या का पहले-पहल प्रकाशन 1924 में हो पाया।

यह दस्तावेज़ मज़दूरों और कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं के अध्ययन के लिए आज भी बेहद प्रासंगिक है। हम यहाँ 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के लिए उक्त मसौदा पार्टी कार्यक्रम की व्याख्या का एक हिस्सा प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें इस प्रक्रिया का सिलसिलेवार ब्योरा दिया गया है कि किस प्रकार कारख़ानों में बड़ी पूँजी का सामना करने के लिए एकता मज़दूर वर्ग की ज़रूरत बन जाती है, और किस प्रकार उनकी वर्ग-चेतना विकसित होती है तथा उसके संघर्ष व्यापक होते जाते हैं। लेनिन ने इस बात पर बल दिया है कि पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष जब राजनीतिक संघर्ष (राज्यसत्ता के विरुद्ध संघर्ष) बन जाता है, तभी वे अपनी और शेष जनता की मुक्ति की दिशा में आगे डग भर पाते हैं। लेनिन के अनुसार, अपनी राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व में एकजुट होकर ही मज़दूर वर्ग अपना यह लक्ष्य हासिल कर सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की रूसी फ़ैक्टरियों से आज की फ़ैक्टरियों के तौर-तरीक़े कई मायनों में बदल गये हैं, लेकिन पूँजीवादी शोषण और उसके विरुद्ध मज़दूरों की एकजुटता एवं लामबन्दी का जो चित्र लेनिन ने उपस्थित किया है, उसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। मज़दूरों और मज़दूर कार्यकर्ताओं के लिए इस ऐतिहासिक दस्तावेज़ का गम्भीर अध्ययन बेहद ज़रूरी है।

(*इस अंश का यह शीर्षक हमारा दिया हुआ है
— सम्पादक)

(पिछले अंक से जारी)

(क) 5. पूँजीपति वर्ग के प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष इस समय सारे यूरोपीय देशों के मज़दूरों और अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया के मज़दूरों द्वारा भी चलाया जा रहा है। मज़दूर वर्ग की एकता तथा ऐक्यबद्धता एक देश या एक जाति तक सीमित नहीं है; भिन्न-भिन्न देशों की मज़दूर पार्टियाँ सारे संसार के मज़दूरों के हितों तथा लक्ष्यों की पूर्ण अनुरूपता (ऐक्यबद्धता) की ऊँचे स्वर में घोषणा करती हैं। वे संयुक्त कांग्रेसों में परस्पर मिलती हैं, सारे देशों के पूँजीपति वर्ग के सामने एक समान माँगें पेश करती हैं, उन्होंने मुक्ति के लिए प्रयास करने वाले पूरे संगठित मज़दूर वर्ग के अन्तरराष्ट्रीय पर्व (मई दिवस) की स्थापना की है, और इस तरह उन्होंने तमाम जातियों तथा तमाम देशों के मज़दूर वर्ग को मज़दूरों की एक महान सेना में सूत्रबद्ध कर दिया है।

मज़दूरों की एकता एक आवश्यकता है, जिसे यह तथ्य जन्म देता है कि पूँजीपति वर्ग, जो मज़दूरों पर शासन करता है, अपने शासन को एक देश तक सीमित नहीं करता। भिन्न-भिन्न देशों के वाणिज्यिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ तथा अधिक व्यापक होते जा रहे हैं; पूँजी निरन्तर एक देश से दूसरे देश को पहुँचती रहती है। बैंक, ये विशाल निक्षेपागार, जो पूँजी को एक जगह जमा करते हैं तथा उसे पूँजीपतियों के बीच क़र्ज़ के रूप में बाँटते हैं, राष्ट्रीय संस्थानों के रूप में काम आरम्भ करते हैं और फिर अन्तरराष्ट्रीय संस्थान बन जाते हैं, तमाम देशों की पूँजी जमा करते हैं और उसे यूरोप तथा अमेरिका के पूँजीपतियों के बीच बाँटते हैं, एक ही देश में नहीं वरन कई देशों में एकसाथ पूँजीवादी प्रतिष्ठान स्थापित करने के लिए इस समय विशाल संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ संगठित की जा रही हैं; पूँजीपतियों की अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ प्रकट हो रही हैं।

पूँजीवादी प्रभुत्व अन्तरराष्ट्रीय है। यही कारण है कि तमाम देशों में अपनी मुक्ति के लिए मज़दूरों का संघर्ष तभी सफल होता है, जब वे अन्तरराष्ट्रीय पूँजी के विरुद्ध संयुक्त रूप से संघर्ष करते हैं। यही कारण है कि पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में रूसी मज़दूर का साथी ठीक उसी तरह जर्मन मज़दूर, पोलिश मज़दूर, और फ़्रांसीसी मज़दूर है, जिस तरह उसके दुश्मन रूसी, पोलिश और फ़्रांसीसी पूँजीपति हैं। इधर, हाल में विदेशी पूँजीपति अपनी पूँजी बड़ी उत्सुकता से रूस को स्थानान्तरित कर रहे हैं, जहाँ वे अपनी फ़ैक्टरियों की शाखाएँ निर्मित कर रहे हैं तथा नये प्रतिष्ठानों के लिए कम्पनियाँ स्थापित कर रहे हैं। वे इस तरुण देश पर ललचायी दृष्टि से झपट रहे हैं, जहाँ सरकार किसी भी अन्य देश की तुलना में पूँजी के लिए अधिक अनुकूल तथा कहीं अधिक ताबेदार है, जहाँ वे मज़दूरों को पश्चिम से कम संगठित तथा जवाबी संघर्ष करने में कम सक्षम पाते हैं, जहाँ मज़दूरों का जीवन-स्तर कहीं नीचा और इसलिए उनकी मज़दूरी कहीं कम है, इस कारण विदेशी पूँजीपति विशाल, इतने बड़े पैमाने पर मुनाफ़े हासिल करने में समर्थ हैं, जो स्वयं उनके अपने देशों के लिए अभूतपूर्व हैं। अन्तरराष्ट्रीय पूँजी रूस की ओर अपने हाथ फैला चुकी है। रूसी मज़दूर अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन की ओर हाथ बढ़ा रहे हैं।

(ख) 1. यह कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण, सर्वप्रमुख मुद्दा है, क्योंकि यह लक्षित करता है कि मज़दूर वर्ग के हितों की रक्षा के लिए पार्टी का कार्यकलाप तमाम सचेत मज़दूरों का कार्यकलाप क्या होना चाहिए। यह बताता है कि समाजवाद की आकांक्षा, इन्सान द्वारा इन्सान के शोषण का उन्मूलन करने की आकांक्षा को किस तरह बड़े पैमाने की फ़ैक्टरियों द्वारा सर्जित रहन-सहन की अवस्थाओं के कारण उत्पन्न जनान्दोलन के साथ सूत्रबद्ध करना चाहिए।

पार्टी का कार्यकलाप मज़दूरों के वर्ग-संघर्ष को बढ़ावा देना होना चाहिए। पार्टी का कार्यभार मज़दूरों की सहायता के लिए कोई फ़ैशनेबल तरीक़ा गढ़ना नहीं, अपितु अपने को मज़दूर आन्दोलन से जोड़ना, उसमें जागृति लाना, मज़दूरों को उन द्वारा पहले ही आरम्भ किये जा चुके संघर्ष में सहायता देना है। पार्टी का कार्यभार मज़दूरों के हितों की रक्षा करना तथा पूरे मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के हितों का प्रतिनिधित्व करना है। तो फिर मज़दूरों को उनके संघर्ष में यह सहायता किस तरह दी जा सकती है?

कार्यक्रम कहता है कि यह सहायता सर्वप्रथम, मज़दूरों की वर्ग-चेतना का विकास करने के लिए दी जानी चाहिए। हम पहले ही बता चुके हैं कि मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष किस तरह पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ सर्वहारा का वर्ग-संघर्ष बन जाता है।

मज़दूरों की वर्ग-चेतना से तात्पर्य उस बात से स्पष्ट होता है, जो हम इस विषय पर पहले कह चुके हैं। मज़दूरों की वर्ग-चेतना का अर्थ मज़दूरों की यह समझ है कि उनके लिए अपनी अवस्थाएँ सुधारने और अपनी मुक्ति हासिल करने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि वे पूँजीपति वर्ग तथा फ़ैक्टरी मालिकों के वर्ग जिन्हें बड़ी फ़ैक्टरियों ने निर्मित किया है, के ख़िलाफ़ संघर्ष करें। इसके साथ ही मज़दूरों की वर्ग-चेतना का अर्थ उनकी यह समझ है कि किसी एक विशेष देश के तमाम मज़दूरों के हित एकसमान होते हैं, कि वे एक ऐसा वर्ग हैं, जो समाज के तमाम अन्य वर्गों से भिन्न है। अन्ततः मज़दूरों की वर्ग-चेतना का अर्थ मज़दूरों की यह समझ है कि अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उन्हें राज्य के मामलों पर प्रभाव डालने के वास्ते उसी तरह काम करना होगा, जिस तरह ज़मींदार तथा पूँजीपति करते थे तथा अब भी करते जा रहे हैं।

इन सबकी समझ मज़दूर कैसे हासिल करते हैं? यह समझ वे ठीक उस संघर्ष से निरन्तर अनुभव प्राप्त करते हुए हासिल करते हैं जिसे वे मालिकों के ख़िलाफ़ छेड़ना आरम्भ करते हैं, जो अधिकाधिक विकसित, तीक्ष्ण होता जाता है तथा जिसमें बड़ी फ़ैक्टरियों के विकास के साथ-साथ अधिकाधिक संख्या में मज़दूर शामिल होते हैं। एक ऐसा वक़्त था, जब पूँजी के विरुद्ध मज़दूरों की शत्रुता अपने शोषकों के विरुद्ध घृणा की धुँधली भावना में, अपने उत्पीड़न तथा दासता की धुँधली चेतना में तथा पूँजीपतियों से बदला लेने की इच्छा में अभिव्यक्त हुआ करती थी। उस समय संघर्ष मज़दूरों के छुटपुट विद्रोहों में अभिव्यक्त होता था, वे इमारतें ध्वस्त करते थे, मशीनें तोड़ते थे, फ़ैक्टरी के प्रबन्धकों पर हमले करते थे, आदि। वह था मज़दूर वर्ग आन्दोलन का पहला, आरम्भिक रूप। और वह आवश्यक था, क्योंकि पूँजीपति से नफ़रत मज़दूरों में अपनी रक्षा करने की इच्छा पैदा करने की दिशा में सदैव तथा सर्वत्र पहला संवेग है। परन्तु रूसी मज़दूर वर्ग आन्दोलन इस मूल रूप से आगे विकसित हो चुका है।

पूँजीपति के विरुद्ध धुँधली नफ़रत के बजाय मज़दूरों ने मज़दूर वर्ग तथा पूँजीपति वर्ग के हितों के बीच वैर-भाव को समझना आरम्भ कर दिया है। उत्पीड़न की धुँधली भावना की बजाय उन्होंने उन उपायों और तरीक़ो को समझना आरम्भ कर दिया है, जिनके द्वारा पूँजी उनका उत्पीड़न करती है। और वे उत्पीड़न के विभिन्न रूपों के विरुद्ध विद्रोह करने लगे हैं, पूँजीवादी उत्पीड़न पर अंकुश लगाने लगे हैं और पूँजीवादी लालच से अपनी रक्षा करने लगे हैं। पूँजीपतियों से बदला लेने की बजाय वे अब रियायतों के लिए संघर्ष की ओर मुड़ रहे हैं, वे एक के बाद दूसरी माँग को लेकर पूँजीपति वर्ग का सामना कर रहे हैं, कामकाज की बेहतर अवस्थाओं, अधिक मज़दूरी तथा काम के कम घण्टों की माँग कर रहे हैं। प्रत्येक हड़ताल मज़दूरों का सारा ध्यान और उनके सारे प्रयास उन अवस्थाओं के किसी एक ख़ास पहलू पर केन्द्रित करती है, जिनके अन्तर्गत मज़दूर वर्ग रहता है।

प्रत्येक हड़ताल इन अवस्थाओं पर विचार-विमर्श को जन्म देती है, मज़दूरों को उनका मूल्यांकन करने, यह समझने में मदद देती है कि किसी एक विशेष मामले में पूँजीवादी उत्पीड़न किसमें निहित है तथा इस उत्पीड़न का मुक़ाबला करने के लिए किन साधनों का उपयोग किया जा सकता है। प्रत्येक हड़ताल पूरे मज़दूर वर्ग के अनुभव को समृद्ध बनाती है। यदि हड़ताल सफल होती है, तो वह उन्हें बताती है कि मज़दूर वर्ग की एकता कितनी प्रबल शक्ति है तथा वह दूसरों को अपने साथियों की सफलता का उपयोग करने के लिए प्रेरित करती है। यदि वह सफल नहीं होती है, तो उसके परिणामस्वरूप विफलता के कारणों पर विचार-विमर्श होता है, संघर्ष के बेहतर तरीक़ों की तलाश की जाती है। अपनी जीवन्त आवश्यकताओं के लिए, रियायतों के लिए, रहन-सहन की अवस्थाओं में, मज़दूरी और काम के घण्टों में सुधार के लिए संघर्ष की ओर इस संक्रमण का, जो अब पूरे रूस में आरम्भ हो गया है, अर्थ यह है कि रूसी मज़दूर ज़बर्दस्त प्रगति कर रहे हैं, और इसी कारण सामाजिक-जनवादी पार्टी तथा समस्त सचेत मज़दूरों का ध्यान मुख्यतया इस संघर्ष पर, उसे प्रोत्साहन देने पर केन्द्रित होना चाहिए।

मज़दूरों को सहायता उन्हें वे मौलिक आवश्यकताएँ दिखाने में निहित होनी चाहिए जिनकी पूर्ति के लिए उन्हें संघर्ष करना चाहिए, यह सहायता भिन्न-भिन्न श्रेणियों के मज़दूरों की अवस्थाओं के बिगड़ने के लिए ज़िम्मेदार कारकों का विश्लेषण करने, उन फ़ैक्टरी क़ानूनों तथा विनियमों को समझाने में निहित होनी चाहिए, जिनके उल्लंघन (इसके साथ ही पूँजीपतियों की कपटपूर्ण तिकड़मों) के ज़रिये मज़दूरों को बहुधा दुहरी डकैती का शिकार बनाया जाता है। सहायता मज़दूरों की माँगों को अधिक सटीक तथा निश्चित अभिव्यक्ति प्रदान करने में, इन माँगों को सार्वजनिक रूप से पेश करने में, प्रतिरोध के लिए सर्वोत्तम समय चुनने में, संघर्ष की विधि चुनने में, दो विरोधी पक्षों की स्थिति तथा शक्ति पर विचार-विमर्श करने में, इस बात पर विचार-विमर्श करने में निहित होनी चाहिए कि संघर्ष करने का क्या और भी कोई बेहतर तरीक़ा चुना जा सकता है (यह तरीक़ा सीधी कार्रवाई उचित न समझे जाने की दशा में परिस्थितियों

(पेज 14 पर जारी)

फ़ैक्टरी-मज़दूरों की एकता, वर्ग-चेतना और संघर्ष का विकास

(पेज 13 से आगे)

पर निर्भर कर सकता है, जैसे फ़ैक्टरी मालिक को चिट्ठी लिखना, इंस्पेक्टर या डॉक्टर के पास पहुँचना आदि)।

हम बता चुके हैं कि इस प्रकार के संघर्ष में रूसी मज़दूरों का संक्रमण उन द्वारा की गयी ज़बर्दस्त प्रगति का द्योतक है। यह संघर्ष मज़दूर वर्ग आन्दोलन को राजपथ पर पहुँचाता (ले जाता) है तथा उसकी आगे की सफलता की निश्चित गारण्टी है। मेहनतकश जनसाधरण इस संघर्ष से सर्वप्रथम, पूँजीवादी शोषण के तरीक़ो को एक-एक कर पहचानना तथा जाँचना, क़ानून के साथ, अपने रहन-सहन की अवस्थाओं के साथ, पूँजीपति वर्ग के हितों के साथ उनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना सीखते हैं। शोषण के विभिन्न तरीक़ों तथा मामलों की जाँच कर वे समग्र शोषण के महत्व तथा सार को समझना सीखते हैं, पूँजी द्वारा श्रम के शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को समझना सीखते हैं।

दूसरे, इस संघर्ष की प्रक्रिया में मज़दूर अपनी शक्ति परखते हैं, ऐक्यबद्ध होना सीखते हैं, एकता की आवश्यकता तथा महत्व समझना सीखते हैं। इस संघर्ष के फैलने तथा टक्करों की बढ़ती बारम्बारता के फलस्वरूप संघर्ष का अनिवार्यत: विस्तार होता है, एकता की भावना, एकजुटता की भावना का — सर्वप्रथम, एक ख़ास इलाक़े के मज़दूरों में और उसके बाद पूरे देश के मज़दूरों में, पूरे मज़दूर वर्ग में — विकास होता है।

तीसरे, यह संघर्ष मज़दूरों की राजनीतिक चेतना का विकास करता है। मेहनतकश जनसाधरण की रहन-सहन की अवस्था उन्हें ऐसी स्थिति में पहुँचा देती है कि राज्य की समस्याओं पर विचार करने के लिए उनके पास न तो फ़ुरसत होती है (हो भी नहीं सकती) और न मौक़ा। दूसरी ओर, अपनी नित्यप्रति की आवश्यकताओं के लिए फ़ैक्टरी मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष अपने आप और अनिवार्यत: मज़दूरों को राज्य के राजनीतिक प्रश्नों के, इन प्रश्नों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करता है कि रूसी राज्य का किस तरह शासन होता है, क़ानून तथा विनियम कैसे जारी किये जाते हैं और वे किनके हितों की पूर्ति करते हैं।

फ़ैक्टरी में प्रत्येक टक्कर मज़दूरों को लाज़िमी तौर पर क़ानूनों और राजकीय सत्ता के प्रतिनिधियों से भिड़ा देती है। इस सिलसिले में मज़दूर पहली बार "राजनीतिक भाषण" सुनते हैं। पहले, वे, उदाहरण के लिए, फ़ैक्टरी-इंस्पेक्टरों की बात सुनते हैं, जो उन्हें समझाते हैं कि उन्हें धोखा देने के लिए अपनायी गयी तिकड़म उन विनियमों के सही-सही अर्थ पर आधारित है, जिन्हें उपयुक्त सत्ता अनुमोदित कर चुकी है तथा जो मज़दूरों को धोखा देने के लिए मालिक को खुली छूट देते हैं या यह समझाते हैं कि फ़ैक्टरी मालिक के उत्पीड़नकारी क़दम सर्वथा क़ानूनी हैं, क्योंकि वह तो महज़ अपने अधिकारों का उपयोग कर रहा है, उस अमुक क़ानून पर अमल कर रहा है, जिसे राजकीय सत्ता अनुमोदित कर चुकी है तथा जिसका वह कार्यान्वयन सुनिश्चित करती है। इंस्पेक्टरों महाशयों के राजनीतिक स्पष्टीकरणों की परिपूर्ति समय-समय पर मंत्री के और भी कल्याणकारी "राजनीतिक स्पष्टीकरणों" द्वारा की जाती है, जो मज़दूरों को उस "ईसाईसुलभ" प्यार की भावनाओं की याद दिलाता है, जिसे उनसे पाने के लिए फ़ैक्टरी मालिक हक़दार हैं, क्योंकि वे उनके श्रम से करोड़ों की कमाई करते हैं।

आगे चलकर राजकीय सत्ता के प्रतिनिधियों के इन स्पष्टीकरणों तथा इन तथ्यों से, जो बताते हैं कि यह सत्ता किसके हित में काम करती है, मज़दूरों की प्रत्यक्ष जानकारी की परिपूर्ति उन पर्चों या उन अन्य स्पष्टीकरणों द्वारा होती है, जिन्हें समाजवादी जारी करते हैं; फलस्वरूप मज़दूर इस प्रकार की हड़ताल से पूरी राजनीतिक शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। वे मज़दूर वर्ग के विशिष्ट हितों को ही नहीं, वरन राज्य में मज़दूर वर्ग के विशिष्ट स्थान को भी समझने लगते हैं। अत: सामाजिक-जनवादी लोग मज़दूरों के वर्ग-संघर्ष को जो मदद दे सकते हैं, वह यह होनी चाहिए — मज़दूरों को उनके सबसे जीवन्त अधिकारों के लिए संघर्ष में सहायता देकर उनकी वर्ग-चेतना का विकास किया जाये।

जैसाकि कार्यक्रम में कहा गया है, दूसरी क़िस्म की सहायता मज़दूरों के संगठन को बढ़ावा देने के रूप में प्रदान की जानी चाहिए। हमने जिस संघर्ष का अभी-अभी वर्णन किया है वह अनिवार्यत: इस बात का तक़ाज़ा करता है कि मज़दूरों को संगठित किया जाये। संगठन हड़ताल करने, उनका संचालन अत्यधिक सफलता के साथ सुनिश्चित करने, हड़तालियों के समर्थन के लिए धन-संग्रह करने, मज़दूर पारस्परिक सहायता कोषों की स्थापना करने, मज़दूरों के बीच प्रचार करने, पर्चे, सूचना तथा घोषणापत्र वितरित करने, आदि के लिए आवश्यक होता है। संगठन और भी ज़्यादा ज़रूरी है, ताकि मज़दूरों को पुलिस तथा राजनीतिक पुलिस के अत्याचार से अपनी रक्षा करने में सक्षम बनाया जा सके, उनकी नज़रों से मज़दूरों के सारे सम्पर्कों तथा संघों को बचाया जा सके, पुस्तकें, पर्चे तथा अख़बार, आदि पहुँचाने की व्यवस्था की जा सके। इन सब कार्यों में सहायता देना — ऐसा है पार्टी का दूसरा कार्यभार।

तीसरा कार्यभार है संघर्ष के असल ध्येय बताना, अर्थात मज़दूरों को यह समझाना कि पूँजी द्वारा श्रम का शोषण कैसे होता है, किस पर आधारित है, ज़मीन और श्रम के औज़ारों का निजी स्वामित्व कैसे मेहनतकश जनसाधरण को ग़रीबी की ओर ले जाता है, उन्हें अपना श्रम पूँजीपतियों को बेचने के लिए तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद अपने श्रम की सारी अतिरिक्त उपज कैसे मुफ़्त समर्पित करने के लिए बाधित करता है; इसके अलावा यह समझाना कि यह शोषण कैसे अनिवार्यत: मज़दूरों तथा पूँजीपतियों के बीच वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है, इस संघर्ष की शर्तें तथा उसके अन्तिम लक्ष्य क्या होते हैं — संक्षेप में, कार्यक्रम में सक्षिप्त रूप में बतायी गयी बातें समझाना।

(ख) 2. मज़दूर वर्ग का संघर्ष राजनीतिक संघर्ष है — इन शब्दों का क्या अर्थ है? इनका अर्थ यह है कि मज़दूर वर्ग राज्य के मामलों पर, राज्य के प्रशासन पर, क़ानून के मसलों पर प्रभाव हासिल किये बिना अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष नहीं कर सकता। इस तरह के प्रभाव की आवश्यकता को रूसी पूँजीपतियों ने बहुत पहले ही समझ लिया था, और हम बता चुके हैं कि वे पुलिस क़ानूनों में सब क़िस्म के निषेधों के बावजूद राजकीय सत्ता पर प्रभाव डालने के हज़ारों उपाय ढूँढने में किस तरह सफल हुए हैं और कैसे यह सत्ता पूँजीपति वर्ग का हित साधन करती है। इसका स्वभावत: यह निष्कर्ष निकलता है कि मज़दूर वर्ग भी राजकीय सत्ता पर प्रभाव हासिल किये बिना अपना संघर्ष नहीं चला सकता, अपनी दशा में कोई स्थायी सुधार तक हासिल नहीं कर सकता।

हम पहले ही कह चुके हैं कि पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ मज़दूरों के संघर्ष का अनिवार्य परिणाम सरकार के ख़िलाफ़ संघर्ष होगा तथा स्वयं सरकार मज़दूरों के सामने यह सिद्ध करने के लिए पूरी कोशिश कर रही है कि केवल संघर्ष तथा संयुक्त प्रतिरोध से ही वे राजकीय सत्ता पर प्रभाव डाल सकते हैं। यह चीज़ 1885-86 में रूस में हुई बड़ी-बड़ी हड़तालों ने विशेष स्पष्टता के साथ प्रदर्शित कर दी। सरकार ने मज़दूरों से सम्बन्धित विनियम तुरन्त तैयार करने आरम्भ कर दिये थे। फ़ौरन फ़ैक्टरी कार्यों के बारे में क़ानून जारी किये। वह मज़दूरों की ज़ोरदार माँगों के आगे झुक गयी (उदाहरण के लिए ज़ुर्माने सीमित करने तथा मज़दूरी की ठीक ढंग से अदायगी सुनिश्चित करने के लिए विनियम जारी किये गये थे)। इसी तरह मौजूदा हड़तालों (1896) में फिर सरकार को तत्काल हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य किया है और सरकार समझ चुकी है कि गिरफ़्तारियों तथा निर्वासनों तक सीमित रहने से काम नहीं चल सकता, कि फ़ैक्टरी मालिकों के उदात्त आचरण के बारे में मूर्खतापूर्ण उपदेशों से मज़दूरों का मनोरंजन करना उपहासास्पद है (देखें फ़ैक्टरी इंस्पेक्टरों के नाम वित्त मंत्री वित्ते की गश्ती चिट्ठी। वसन्त, 1896)। सरकार ने अनुभव कर लिया है कि "संगठित मज़दूर ऐसी शक्ति हैं जिसे ध्यान में रखना होगा"। इसलिए फ़ैक्टरी क़ानून में संशोधन करने का कार्य पहले ही उसके विचाराधीन है और काम के घण्टे घटाने तथा मज़दूरों को दूसरी अनिवार्य रियायतें देने के प्रश्न पर विचार करने के लिए उसने वरिष्ठ फ़ैक्टरी इंस्पेक्टरों की कांग्रेस सेण्ट पीटर्सबर्ग में बुलायी है।

इस तरह हम देखते हैं कि पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग के संघर्ष को अवश्य ही राजनीतिक संघर्ष होना चाहिए। वस्तुत: यह संघर्ष राजकीय सत्ता पर प्रभाव डालने भी लगा है, राजनीतिक महत्व हासिल कर रहा है। परन्तु मज़दूर वर्ग आन्दोलन ज्यों-ज्यों विकसित होता है त्यों-त्यों मज़दूरों के पास राजनीतिक अधिकारों का सरासर अभाव जिसके बारे में हम पहले ही बता चुके हैं, तथा मज़दूरों द्वारा राजकीय सत्ता पर खुले तथा प्रत्यक्ष रूप में प्रभाव डालने की सरासर असम्भवता स्पष्टतया तथा तीक्ष्णतापूर्वक स्पष्ट होती जाती है तथा अनुभव की जाती है। यही कारण है कि मज़दूरों की सबसे तात्कालिक माँग राज्य के मामलों पर मज़दूर वर्ग के प्रभाव का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए राजनीतिक स्वतंत्रता की उपलब्धि, अर्थात राज्य के प्रशासन में तमाम नागरिकों की क़ानून (संविधान) द्वारा गारण्टीशुदा सीधी शिरकत, स्वतंत्र रूप से जमा होने, अपने मामलों पर विचार-विमर्श करने, अपनी संस्थाओं तथा अख़बारों के ज़रिये राज्य पर प्रभाव डालने के गारण्टीशुदा अधिकार। राजनीतिक स्वतंत्रता की उपलब्धि "मज़दूरों का जीवन्त कार्यभार" बन जाती है क्योंकि उसके बिना मज़दूरों का राज्य के मामलों पर कोई प्रभाव नहीं होता और न हो सकता है, तथा इस तरह वे अनिवार्यत: अधिकारहीन, अपमानित तथा मूक वर्ग बने रहते हैं। और यदि इस समय भी, जब मज़दूरों ने संघर्ष करना तथा अपनी क़तारों को ऐक्यबद्ध करना आरम्भ ही किया है, सरकार आन्दोलन को और आगे बढ़ाने से रोकने के लिए मज़दूरों को जल्दी-जल्दी रियायतें देने लगी है, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब मज़दूर अपनी क़तारों को पूरी तरह ऐक्यबद्ध कर लेंगे तथा एक राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व में एकजुट हो जायेंगे, तो वे सरकार को आत्मसमर्पण करने के लिए बाधित कर सकेंगे, वे अपने लिए तथा पूरी रूसी जनता के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल कर सकेंगे!

दिसम्बर 1895 – जुलाई 1896 के दौरान लिखित।
पहले पहल 1924 में प्रकाशित।
अंग्रेज़ी से अनूदित।

"न्यू इण्डिया" में बच्चों का घिनौना कारोबार

(पेज 12 से आगे)

किया गया है जबकि बड़े पैमाने पर लोगों की तस्करी उनसे ज़बरन काम कराने के लिए की जाती है। गुजरात की जिस घटना का अभी पर्दाफ़ाश हुआ है, वह तो हमारे समाज की बर्बर सच्चाई का महज़ एक छोटा-सा हिस्सा है। कारख़ानों, होटलों, ईंट भट्ठों, घरों, दफ़्तरों में बेहद सस्ती दरों पर काम कराने के लिए बच्चों, औरतों और बहुत सी जगहों पर पूरे के पूरे परिवारों को झाँसा देकर उनके गाँवों से ले आया जाता है। भारत में सबसे ज़्यादा मानव तस्करी जबरिया श्रम कराने के लिए होती है। इतना ही नहीं, पीड़ितों के लिए जो आश्रय गृह सरकार द्वारा चलाये जाते हैं वहाँ पर भी जबरिया काम, वेश्यावृत्ति, यौन शोषण के मामले आये दिन सामने आते रहते हैं। मुज़फ़्फ़रपुर व देवरिया के आश्रय गृहों में बच्चियों के साथ होने वाली हैवानियत की ख़बरें मीडिया से ज़रूर ग़ायब हो गयी हैं, लेकिन कोई भी संवेदनशील इन्सान उन्हें भूल नहीं सकता।

बिगुल मज़दूर दस्ता व नौजवान भारत सभा ने मई 2008 में राष्ट्रीय राजधानी में ग़ायब होते ग़रीबों के बच्चों और इस मामले में पुलिस प्रशासन द्वारा पूर्वाग्रहों से काम करने का सवाल उठाते हुए एक अभियान चलाया था। ग़ाज़ियाबाद, नोएडा और दिल्ली में ग़ायब हो रहे बच्चों और पुलिस की भूमिका पर 'गुमशुदा बचपन' शीर्षक से रिपोर्ट जारी की गयी थी। इसके बाद कई मीडिया संस्थानों व अन्य संस्थाओं का ध्यान इधर गया था लेकिन पुलिस या सरकार की ओर से कोई कार्रवाई नहीं हुई। दिल्ली हाईकोर्ट में यह मामला उठाये जाने के बाद कई दिशानिर्देश भी जारी किये गये। निठारी की घटना के बाद राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थानों ने एक विशेष जाँच समिति भी गठित की थी जिसने बच्चों के ग़ायब होने के सम्बन्ध में कई सिफ़ारिशें भी की थीं। सुप्रीम कोर्ट ने भी इस सम्बन्ध में दिशा-निर्देश जारी किये थे। लेकिन ज़्यादातर मामलों में किसी आदेश का पालन नहीं किया जाता है। चूँकि ये ग़रीब मज़दूरों के बच्चे हैं इसलिए इन पर किसी का ध्यान नहीं जाता है। दूसरी ओर, नोएडा में एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के सीईओ का बच्चा खो जाने पर पूरा प्रशासन व मीडिया उसे खोजने में लग जाता है।

हमें इस बारे में किसी भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि किसी अदालती आदेश या प्रशासनिक क़दम से ही यह समस्या हल हो जायेगी। औरतों, बच्चों आदि को पूँजीवादी समाज के राक्षस से बचाने के लिए क़दम-क़दम पर लड़ते हुए हमें यह याद रखना होगा कि इस नरभक्षी व्यवस्था को तबाह किये बिना इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण और लूट समाप्त नहीं होगी।

नये साल पर मज़दूर साथियों के नाम 'बिगुल' का सन्देश

नये वर्ष पर नहीं है हमारे पास आपको देने के लिए
सुन्दर शब्दों में कोई भावविह्वल सन्देश
नये वर्ष पर हम सिर्फ़ आपकी आँखों के सामने
खड़ा करना चाहते हैं
कुछ जलते-चुभते प्रश्नचिह्न
उन सवालों को सोचने के लिए लाना चाहते हैं
आपके सामने
जिनकी ओर पीठ करके आप खड़े हैं।
देखिए! अपने चारों ओर बर्बरता का यह नग्न नृत्य
जड़ता की ताक़त से आपके सीने पर लदी हुई
एक जघन्य मानवद्रोही व्यवस्था
देखिए! अपने आस-पास की इस दुनिया को
जहाँ सामूहिक बलात्कार के शिकार
युवा स्वप्न पड़े हैं सरेआम सड़क पर लथपथ
क्या सचमुच हम बग़ल से होकर
चुपचाप गुज़र सकते हैं?
लोगों को पूँजी की नंगी ग़ुलामी में झोंक देने के लिए
हर विरोध को कमज़ोर और टुकड़े-टुकड़े
कर डालने के लिए
झूठ और नफ़रत की आँधी चलायी जा रही है
ज़हर से भर दिया जा रहा है समाज के
हर ताने-बाने को।
लांछित और कलंकित किया जा रहा है
हमारे अतीत के गौरवशाली संघर्षों और क़ुर्बानियों को,
और सनक और बेवक़ूफ़ी बताया जा रहा है
मुक्ति के हमारे सपनों को
भविष्य की हमारी परियोजनाओं को
हवाई मंसूबा बताया जा रहा है
विद्वानों की सैद्धान्तिक उल्टियों से सड़क-चौराहे
बदबू कर रहे हैं
क्या ये सारी स्थितियाँ आपको सचमुच
क़ाबिले-बर्दाश्त लगती हैं?
कृत्या राक्षसी की तरह हू-हू करती
पूँजी भाग रही है भूमण्डल पर चारों ओर
उठ रहे हैं और लड़ रहे हैं यहाँ-वहाँ
हमारे आपके साथी और भाई-बहन
और एक स्पष्ट दिशा और
अपने जैसों के साथ के अभाव में
टूट जा रही हैं और बिखर जा रही हैं उनकी लड़ाइयाँ।
क्या सचमुच हम और आप
ऐसी लोहे की दीवारों के बीच
क़ैद हो गये हैं जहाँ कोई भी पुकार हमें सुनाई नहीं देती

नये साल पर हम सिर्फ़ आपसे यही पूछना चाहते हैं।
हम आपको एक लम्बी, सुदूर, बीहड़ यात्रा पर
फिर से चल पड़ने के लिए
तैयार हो जाने का न्यौता दे रहे हैं।
हम आपसे फिर उठ खड़े होने के लिए कह रहे हैं
यह दुनिया यूँ ही रेंगती हुई ख़त्म नहीं होने वाली है
और पूँजी के ज़ुल्मी निज़ाम को
दफ़्न करने का इतिहास का जो हुक्म है
उसकी तामील आप ही को करनी है
चाहे आप जितनी भी देर करें
आप अपने इस ऐतिहासिक दायित्व से
मुँह नहीं चुरा सकते।
नये साल पर कहने के लिए हमारे पास
बस यही कुछ असुविधाजनक और
चिन्ता और चुनौतियों से भरी हुई बातें हैं
अगर आप सुन पायें तो इन पर सोचिएगा ज़रूर!

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

2019 : दुनियाभर में व्यवस्था-विरोधी व्यापक जनान्दोलनों का वर्ष

– आनन्द सिंह

पिछले कुछ वर्षों से दुनियाभर में लुटेरे और उत्पीड़क शासकों के विरुद्ध जनता सड़कों पर उतर रहे हैं। विश्व पूँजीवादी व्यवस्था का संकट गहराते जाने के साथ ही जहाँ एक ओर दुनिया के अनेक मुल्क़ों में फ़ासिस्ट या अर्द्धफ़ासिस्ट क़िस्म की ताक़तें मज़बूत हो रही हैं, वहीं लोगों के अधिकरों पर हमला करने वाले सत्ताधारियों को उग्र जनसंघर्षों का भी सामना करना पड़ रहा है।

वर्ष 2019 में तो शायद ही कोई दिन रहा हो जब दुनिया के पाँचों महाद्वीपों के अनेक देशों में बड़ी तादाद में लोग सड़कों पर न उतरे हों। ये जनान्दोलन इतने व्यापक थे कि तमाम प्रतिष्ठित बुर्जुआ मीडिया घराने और थिंकटैंक भी 2019 को "वैश्विक विद्रोह का वर्ष" घोषित कर रहे हैं। उनके ऐसा करने के पीछे असली मक़सद शासक वर्ग को यह चेतावनी देना है कि जनता जाग रही है, सँभल जाओ और इससे निपटने की तैयारी करो। लेकिन मज़दूर वर्ग के नज़रिये से देखें तो विश्व पूँजीवाद को कमज़ोर करने में इन जनान्दोलनों का महत्व कम नहीं है।

इस साल हांगकांग, इराक़, ईरान, लेबनान, मिस्र, चिले, सूडान, इक्वाडोर, अल्जीरिया, आस्ट्रेलिया और फ़्रांस आदि की सड़कों पर विशाल जनसैलाब उमड़ पड़ा। इन आन्दोलनों की तात्कालिक वजहें भले ही अलग-अलग रही हों, लेकिन इन्हें विश्व-पूँजीवाद के संकट से काटकर नहीं देखा जा सकता।

हांगकांग की सड़कों पर लाखों की तादाद में उमड़े जनसैलाब की तात्कालिक वजह विवादास्पद सुपुर्दगी क़ानून था जिसके तहत हांगकांग में होने वाले किसी भी अपराध के अभियुक्त को चीन को सुपुर्द किया जा सकता था और उस पर चीन की कुख्यात अदालतों में मुक़दमा चलाया जा सकता था जहाँ 90 प्रतिशत मामलों में अभियुक्त को दोषी ठहराकर सज़ा दे दी जाती है। हांगकांग के लोगों को यह अपने शहर के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप लगा और उसके ख़िलाफ़ जनता सड़कों पर उतर पड़ी। इस आन्दोलन में बड़ी संख्या युवाओं और किशोरों की थी। शहर की ट्रेड यूनियनों के आह्वान पर भी लाखों लोग सड़कों पर उतरे। इस जनान्दोलन को बर्बरतापूर्वक पुलिसिया दमन से कुचल देने की तमाम कोशिशें नाकाम रहीं और आन्दोलनकारियों ने पुलिस की आँखों में धूल झोंकने के नये-नये तरीक़े भी आज़माये। हाँलाकि इस आक्रोश की आग पर ठण्डे पानी के छींटे डालने के लिए हांगकांग के प्रशासन ने विवादास्पद सुपुर्दगी क़ानून वापस ले लिया, लेकिन उसके बाद भी यह जनान्दोलन थमा नहीं, बल्कि उसने और व्यापक रूप अख़्तियार कर लिया। बाद में प्रदर्शनकारी पुलिस के बर्बर दमन और हांगकांग में चीन के बढ़ते प्रभाव के ख़िलाफ़ प्रदर्शन करने लगे। ग़ौरतलब है कि इन प्रदर्शनों में इतने बड़े पैमाने पर जनभागीदारी को हांगकांग में चल रहे आर्थिक संकट की पृष्ठभूमि में रखकर ही समझा जा सकता है। दुनियाभर में आर्थिक असमानता वाले शहरों में हांगकांग सबसे ऊपर के पायदानों पर है। दुनिया के सबसे महँगे शहरों में भी हांगकांग की गिनती होती है। वहाँ सिर्फ़ ग़रीब ही नहीं बल्कि औसत मध्यवर्ग के लोग भी बड़ी मुश्किल से इन हालात को झेल रहे हैं। ऐसे में चीन का हस्तक्षेप उनके ज़ख़्म में नमक डालने का काम करता है। दोहराने की ज़रूरत नहीं कि चीन के नकली कम्युनिस्ट शासकों ने दुनिया की सबसे दमनकारी राज्य मशीनरी का निर्माण किया है। ख़ुद चीन के भीतर भी मज़दूर हड़तालों का सिलसिला जारी रहा लेकिन बुरी तरह नियंत्रित मीडिया के चलते उनकी कम ही ख़बरें बाहर आ पायीं।

लेबनान की सड़कों पर भी इस साल विराट जनसैलाब देखने को आया। वहाँ की सरकार द्वारा व्हाट्सऐप के इस्तेमाल पर लगाये गये भारी कर के बाद उमड़े इस जनान्दोलन ने देखते ही देखते आर्थिक तंगी और संकट के ख़िलाफ़ जनविद्रोह का रूप ले लिया। आन्दोलन के कुछ दिनों में क़रीब 13 लाख लोग यानी वहाँ की कुल आबादी के 20 फ़ीसदी लोग सड़कों पर उतरे। 2005 की 'देवदार क्रान्ति' के बाद पहली बार इतनी बड़ी संख्या में लोग बेरूत और त्रिपोली की सड़कों पर उतरे। लेबनान की भी अर्थव्यवस्था ढहने की कगार पर है। वहाँ का राष्ट्रीय क़र्ज़ जीडीपी का 150 फ़ीसदी से भी ज़्यादा पहुँच चुका है और वहाँ की मुद्रा का लगातार अवमूल्यन होता जा रहा है। महँगाई और बेरोज़गारी चरम पर है।

इसी प्रकार चिले में भी राजधानी सैंटियागो के मेट्रो रेल के टिकट के किराये में बढ़ोत्तरी के विरोध में शुरू हुए छात्रों-युवाओं के आन्दोलन ने जल्द ही एक व्यवस्था-विरोधी व्यापक रूप ले लिया। इस आन्दोलन के निशाने पर भी अर्थव्यवस्था का संकट, मज़दूरी में कटौती, कल्याणकारी योजनाओं में कटौती, लचर सार्वजनिक सुविधाएँ जैसे मुद्दे थे। इसकी व्यापकता का अन्दाज़ा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि चिले की दक्षिणपन्थी सरकार को उसको कुचलने के लिए हज़ारों फ़ौजियों को सैंटियागो की सड़कों पर उतारना पड़ा। लेकिन उससे आन्दोलन और व्यापक हो गया। अन्ततः वहाँ की सरकार को घुटने टेकने पड़े।

फ़्रांस में तेल के दामों में बढ़ोत्तरी के विरुद्ध 'पीली कुर्ती वालों' का जो आन्दोलन इस वर्ष के मध्य में भड़का था वह सरकारी दमन और छोटी-मोटी रियायतें देकर शान्त करने के प्रयासों के बावजूद ख़त्म होने का नाम नहीं ले रहा। यह वर्ष ख़त्म होने तक फ़्रांस में जारी आम हड़ताल अपने 29वें दिन में प्रवेश कर गयी थी जो 51 वर्षों का रिकॉर्ड है।

पिछले साल इराक़, इरान, स्पेन, अल्जीरिया, सूडान में भी ज़बर्दस्त आन्दोलन देखने में आये और उनके बर्बर रक्तपातपूर्ण दमन में सैकड़ों लोगों की जान चली गयी। यह बात सच है कि उपरोक्त आन्दोलनों के भड़कने के तात्कालिक कारण अलग-अलग देशों में अलग-अलग रहे हैं। लेकिन इनमें एक चीज़ साझा है कि वे सभी पूँजीवादी संकट और दमनकारी पूँजीवादी राज्यसत्ता के विरुद्ध जनविद्रोह की अभिव्यक्तियाँ हैं। इतिहास में अक्सर ऐसा देखने में आया है कि सामाजिक-आर्थिक संकट के परिवेश में एक मामूली-सी लगने वाली घटना भी एक बड़े आन्दोलन के शुरू होने का कारण बन सकती है।

भूमण्डलीकरण के युग में आज पूँजीवाद सच्चे अर्थों में एक वैश्विक उत्पादन प्रणाली का रूप अख़्तियार कर चुका है। ऐसे में पूँजीवाद का संकट भी भूमण्डलीकृत होकर पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले रहा है। विश्व पूँजीवाद 2007-08 से जिस संकट के भँवर में फँसा हुआ है उससे अभी तक बाहर नहीं निकल पाया है। मुनाफ़े की गिरती दर के इस संकट का असर समूची दुनिया में मन्दी, छँटनी, बेरोज़गारी, महँगाई के रूप में दिखाई दे रहा है। उत्पादक शक्तियों के विकास की अलग-अलग मंज़िलों में होने और अलग-अलग इतिहास होने के कारण संकट का असर भी अलग-अलग-देशों में अलग-अलग है। लेकिन भूमण्डलीकरण के युग में न सिर्फ़ संकट सार्वभौमिक हो रहा है बल्कि वैश्विक स्तर पर सूचनाओं और विरोध के तौर-तरीक़ों का भी आदान-प्रदान अभूतपूर्व रूप से हो रहा है। दुनिया के मज़दूरो, एक हो का मार्क्स का उद्घोष आज वास्तव में साकार होने की परिस्थितियाँ तैयार हो चुकी हैं।

ये सभी विरोध प्रदर्शन आम तौर पर पूँजीवाद के विरुद्ध होते हुए भी उनमें स्वतःस्फूर्तता का पहलू बहुत अधिक है। संगठनबद्धता, सुसंगत विचारधारा और नेतृत्व का अभाव इन आन्दोलनों में साफ़ दिखाई देता है। इस वजह से इनमें जनता की भारी भागीदारी के बावजूद शासक वर्ग के लिए इस भीड़ को क़ाबू में करना अक्सर आसान हो जाता है। जब दमन से बात नहीं बनती तो शासक वर्ग कूटनीतिक पैंतरा फेंककर आन्दोलनकारियों की कुछ तात्कालिक माँगों को मान लेते हैं और किसी दीर्घकालिक रणनीति के अभाव में ये आन्दोलन समय के साथ क्षीण हो जाते हैं। या फिर आन्दोलन के दबाव में सरकारें बदल जाती हैं और लुटेरे-उत्पीड़क शासकों का कोई दूसरा गुट सत्ता में आ जाता है। जैसाकि 2011 के 'अरब विद्रोह' के समय मिस्र सहित कई देशों में हुआ। सरकारें बदल गयीं लेकिन व्यवस्था परिवर्तन नहीं हुआ। संगठन, विचारधारा और नेतृत्व के अभाव में ये विद्रोह क्रान्ति की दिशा में नहीं बढ़ सकते हैं। वे वैकल्पिक व्यवस्था नहीं निर्मित कर सकते हैं क्योंकि उनके पास विकल्प का कोई ख़ाका नहीं है। मेहनतकश वर्ग के क्रान्तिकारी प्रतिनिधि भी आज दुनिया में बिखराव और कई तरह के वैचारिक भटकावों से जूझ रह हैं। उन्हें अपने बीच भी वैचारिक स्पष्टता लानी होगी, पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के काम करने के तरीक़ों को समझकर क्रान्ति की ओर बढ़ने की सही रणनीति और रणकौशल विकसित करने होंगे। तभी वे ऐसे आन्दोलनों के साथ एकजुटता ज़ाहिर करने के साथ ही पूँजीवाद-साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने तथा समाजवादी व्यवस्था के निर्माण हेतु जनक्रान्ति के लिए लोगों को तैयार कर सकेंगे।

इस झूठी सरकार और इसके परम झूठे प्रधानमंत्री पर लोग कैसे यक़ीन करें?

अभी तक अमित शाह कह रहे थे कि सीएए से भारतीय मुसलमानों पर कोई असर नहीं पड़ेगा। अब मोदी ने झूठों का पहाड़ खड़ा करते हुए कह दिया कि एनआरसी पर उनकी सरकार में कभी बात ही नहीं हुई है! डिटेंशन सेण्टर कहीं हैं ही नहीं!

गोयबल्स भी आज अपनी क़ब्र में छटपटा रहा होगा, झूठ की कला को सातवें आसमान पर पहुँचाने वाले अपने इस शागिर्द से मिलने के लिए।

संसद में सरकार के मंत्री ने बताया है कि असम के डिटेंशन सेण्टरों में कम से कम 28 लोगों की मौत हो चुकी है। असम सहित कई राज्यों में अरबों रुपये ख़र्च करके अनेक विराटकाय डिटेंशन सेण्टर बन रहे हैं। मगर मोदी को अपने समर्थकों पर पूरा भरोसा है कि उसके किसी भी झूठ को वे ऐसे लपक लेंगे जैसे टॉमी अपने मालिक के हाथ से टुक्कड़ लपककर गटक लेता है।

अमित शाह और दूसरे भाजपा नेता कई बार कह चुके हैं कि सीएए के बाद एनआरसी को पूरे देश में लागू किया जायेगा। इसका सीधा मतलब है कि भारतीय मुसलमानों पर ही नहीं, इस देश के हर नागरिक पर इसका असर पड़ेगा – ग़रीब, वंचित, मेहनतकश आबादी इससे सबसे ज़्यादा प्रभावित होगी, चाहे वह किसी भी धर्म की हो। और मुसलमानों को लगातार डराकर-आतंकित करके रखने के लिए इसका इस्तेमाल किया जायेगा।

नागरिकता क़ानून को एनआरसी से कौन जोड़ रहा है?

अब मीडिया में कई ऐसी रिपोर्टें आ चुकी हैं जो बताती हैं कि अनेक बार ख़ुद अमित शाह कह चुके हैं कि सीएए का एनआरसी से सीधा रिश्ता है। इसी साल, पहली मई को पश्चिम बंगाल में चुनाव के दौरान रैली में शाह ने "घुसपैठियों" को "दीमक" कहते हुए कहा कि "पहले हम नागरिकता संशोधन क़ानून पास करेंगे... उसके बाद एनआरसी लाया जायेगा।" उससे पहले, 11 अप्रैल को बंगाल के रायगंज की रैली में शाह ने कहा, "हम पूरे देश में एनआरसी को पक्के तौर पर लागू करवायेंगे। हम देश से एक-एक घुसपैठिये को निकाल बाहर करेंगे, सिवाय बुद्ध, हिन्दू और सिखों के।" 23 अप्रैल को भाजपा द्वारा जारी वीडियो में भी ऐसी ही बातें हैं।

ध्यान रखिए, कि नागरिकता संशोधन क़ानून के तहत और शाह की बातों के मुताबिक़, भारत में बिना दस्तावेज़ों के रह रहा कोई भी ग़ैर-मुस्लिम व्यक्ति "शरणार्थी" होने का दावा कर सकता है, उसे प्रताड़ित किये जाने या दूसरे देश से प्रवासी के तौर पर आये होने का कोई सबूत देने की भी ज़रूरत नहीं होगी। जबकि कोई भी मुस्लिम जिसके पास दस्तावेज़ नहीं होंगे, उसे घुसपैठिया माना जायेगा – और एनआरसी की क़वायद के दौरान बाहरी व घुसपैठिया घोषित कर दिया जायेगा। पिछले ही महीने, राज्य सभा में एनआरसी पर हुई चर्चा में अमित शाह ने कहा : "एनआरसी में सभी भारतीय नागरिकों की सूची बनायी जायेगी।... लेकिन यह सही है और सरकार मानती है कि हिन्दू शरणार्थी, बौद्ध, जैन, सिख, ईसाई, पारसी शरणार्थियों को नागरिकता मिलनी चाहिए और इसीलिए हम नागरिकता संशोधन विधेयक लेकर आये हैं।"

AltNews के प्रतीक सिन्हा ने भी अमित शाह के कई वीडियो को एक साथ पेश किया है जिसमें वह सीएए और एनआरसी के जुड़े होने की बात कर रहे हैं। इसके बाद भी अगर मोदी, शाह और भाजपा नेता कह रहे हैं कि इस क़ानून से भारत के किसी व्यक्ति पर कोई असर नहीं पड़ेगा, तो ज़ाहिर है कि यह उनके झूठों की लम्बी कड़ी का ही हिस्सा है और इसीलिए टीवी चैनलों, हिन्दी अख़बारों, बिके हुए मुस्लिम नेताओं आदि के अलावा कोई उनकी बातों पर यक़ीन नहीं कर रहा है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006